अंग क्यों फड़कते हैं?

क्या कहते हैं?

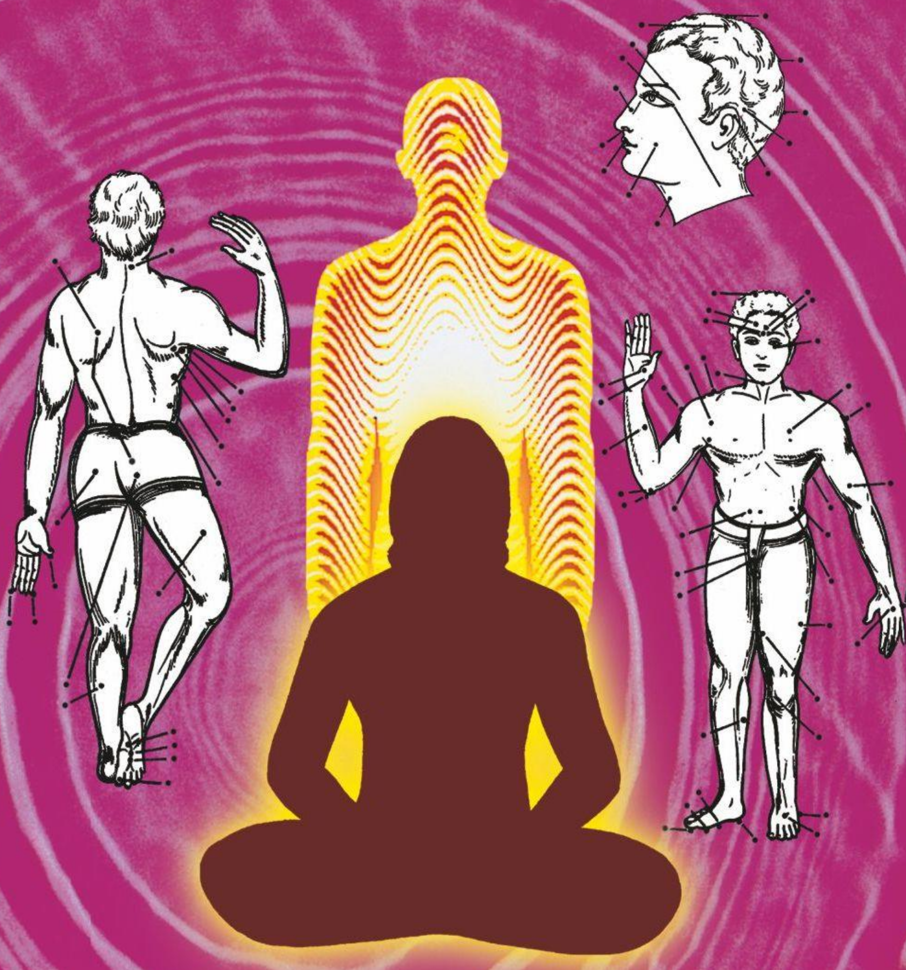

स्वामी अड़गड़ानन्दजी

।। ॐ नमः सद्गुरुदेवाय ।।

अंग क्यों फड़कते हैं? क्या कहते हैं?

लेखक :

परमपूज्य श्री परमहंस जी महाराज का कृपा-प्रसाद

स्वामी श्री अड़गड़ानन्दजी

श्री परमहंस आश्रम, शक्तेषगढ़, चुनार-मिर्जापुर (उ०प्र०)

प्रकाशक :

श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्दजी आश्रम ट्रस्ट

न्यू अपोलो एस्टेट, गाला नं 5, मोगरा लेन (रेलवे सबवे के पास)

अंधेरी (पूर्व), मुम्बई – 400069

अनन्तश्री विभूषित,

योगिराज, युग पितामह

परमपूज्य श्री स्वामी परमानन्द जी

श्री परमहंस आश्रम अनुसुइया–चित्रकूट

के परम पावन चरणों में

सादर समर्पित

अन्त:प्रेरणा

गुरु-वन्दना

।। ॐ श्री सद्‌गुरुदेव भगवान् की जय ।।

जय सद्‌गुरुदेवं, परमानन्दं, अमर शरीरं अविकारी।
निर्गुण निर्मूलं, धरि स्थूलं, काटन शूलं भवभारी।।

सूरत निज सोहं, कलिमल खोहं, जनमन मोहन छविभारी।
अमरापुर वासी, सब सुख राशी, सदा एकरस निर्विकारी।।

अनुभव गम्भीरा, मति के धीरा, अलख फकीरा अवतारी।
योगी अद्वेष्टा, त्रिकाल द्रष्टा, केवल पद आनन्दकारी।।

चित्रकूटहिं आयो, अद्वैत लखायो, अनुसुइया आसन मारी।
श्री परमहंस स्वामी, अन्तर्यामी, हैं बड़नामी संसारी।।

हंसन हितकारी, जग पगुधारी, गर्व प्रहारी उपकारी।
सत्-पंथ चलायो, भरम मिटायो, रूप लखायो करतारी।।

यह शिष्य है तेरो, करत निहोरो, मोपर हेरो प्रणधारी।
जय सद्‌गुरु.........भारी।।

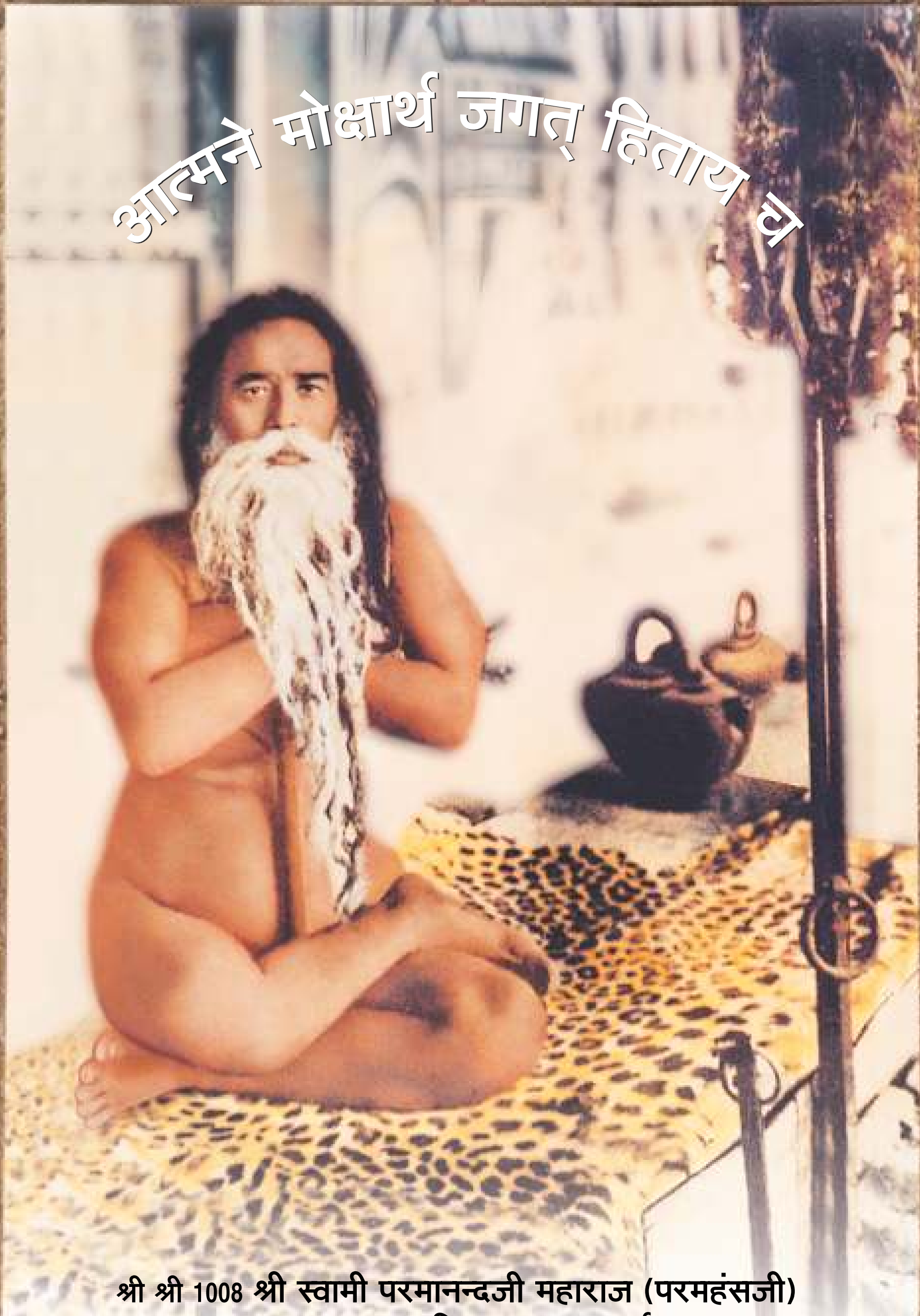

श्री श्री 1008 श्री स्वामी परमानन्दजी महाराज (परमहंसजी)

जन्मः शुभ सम्वत् विक्रम 1969 (1911 ई.)

महाप्रयाण ज्येष्ठ शुक्ल 7, 2026, दिनांक 23/05/1969 ई.

परमहंस आश्रम अनुसुइया, चित्रकूट

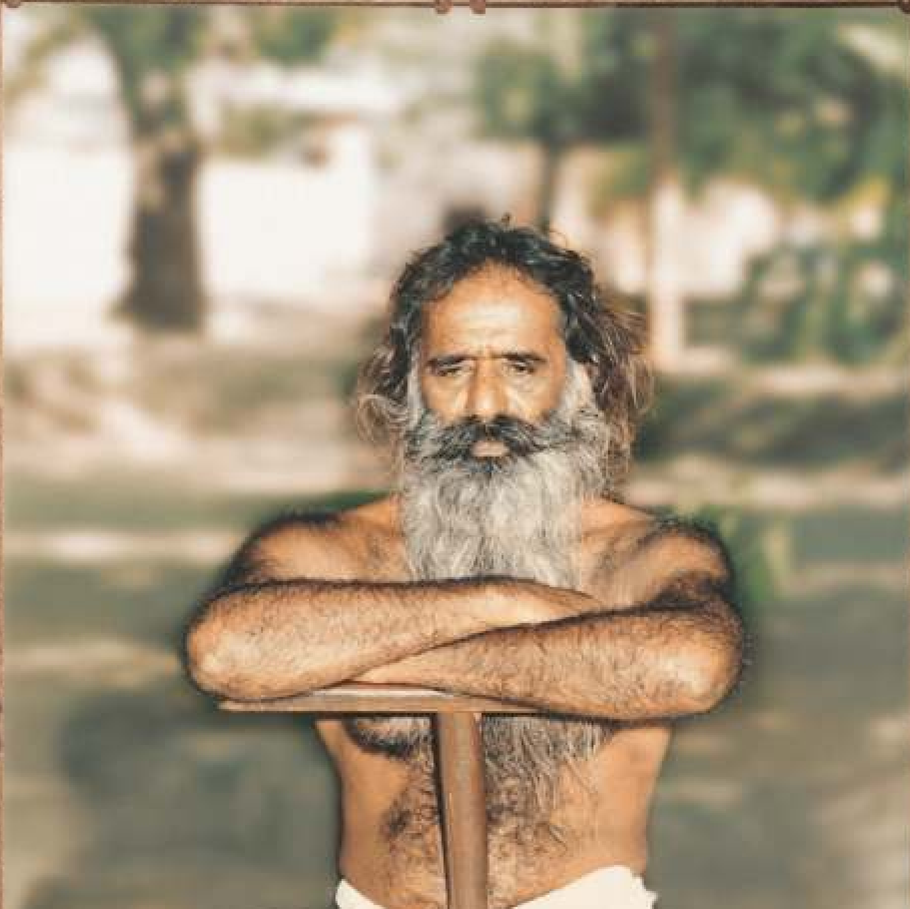

श्री स्वामी अड़गड़ानन्द जी महाराज

प्राक्कथन

परमात्मा सभी स्थानों से बोल सकते हैं– पेड़ से, पत्थर से, जल एवं थल से, आकाश से, पशु-पक्षी से, नदी तथा पहाड़ से; जड़-चेतन इत्यादि किसी भी माध्यम से निर्देश दे सकते हैं। वे कर्तुं-अकर्तुं अन्यथा कर्तुं समर्थ हैं। सर्वत्र सार्वभौम उनकी छटा है। श्रवण-नयन-मन-गोचर समग्र सृष्टि उन्हीं का यन्त्र-तन्तु है। आर्त अनुरागी भक्तों के लिए जब वह नयनाभिराम प्रेरक बन जाते हैं, तब सब स्थानों से अपना कार्य सम्पादित करते हैं।

ब्रह्ममयी वाणी की असंख्य धाराओं में से लगभग छः का उल्लेख विज्ञ ब्रह्मनिष्ठ पुरुषों की वाणी में हुआ है। उनमें से एक क्षेत्र अंग स्फुरण का भी है, जिसकी क्रियात्मक अनुभूति का उल्लेख प्रस्तुत पुस्तक में किया गया है। आत्मानुभूति के इस सूक्ष्म संचार में परमतत्त्व परमात्मा एवं परमगुरु एक दूसरे के पर्याय हैं। वैसे वे परमप्रभु किसी भी माध्यम से यथार्थ निर्देशनों का विधान बना सकते हैं; क्योंकि वे मानव के जन्म-जन्मान्तर की क्रियाओं को शाश्वत परिधान में देखते रहते हैं। किन्तु अंग स्फुरण इत्यादि निर्देशनों से पथिक को आत्मदर्शन की ही कामना करनी चाहिये। उन परमतत्त्व परमात्मा की उपलब्धि के पश्चात् ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं रहता।

जब सुशिक्षित समाज द्वारा ऐसा प्रश्न किया जाता था कि ''भगवन्! ऐसा कोई साधन बताइये जिसे हमलोग करें।'', तब पूज्य गुरुदेव भगवान कहा करें– ''हो, सब बात सब कोई जानत हैं। दो-दो पैसे में वेदान्त बिकत है। लोग पढ़त हैं और लिखतौ जात हैं; किन्तु साधना एक ऐसी वस्तु है जो लिखने में नहीं आती।'' वह तो प्रत्यक्ष अनुभूति है जो किसी अनुभवी सद्‌गुरु द्वारा अधिकारी के अन्तर्देश में जागृत कर दी जाती है। वस्तुतः वह समस्त अनुभूतियाँ अनुभवी सद्‌गुरु के प्रति मन-वचन-कर्म से समर्पित होते ही प्रकाशित तथा जागृत होनेवाली हैं। उन्हीं के निर्देशनों पर चलकर

प्रत्याशी अपने गन्तव्य स्थान तक पहुँच जाता है। अध्यात्म-प्रक्रिया की उत्पत्ति के अनन्तर अद्यावधि परब्रह्म परमात्मा में प्रवेश करनेवाले जितने भी योगी हुए हैं, वे सभी मूल इष्ट के निर्देशनों पर चलकर ही परमतत्त्व तक पहुँचे। इसके अतिरिक्त उस परमतत्त्व की प्राप्ति का अन्य कोई पथ नहीं है।

इष्ट-निर्देशन से योगी दिव्यदृष्टि और ईश्वर-दृष्टि से गुजरते हुए परब्रह्म में स्थिति प्राप्त करता है। यह सौभाग्य केवल उन्हीं को सुलभ होता है जो प्रयत्नपूर्वक मंजिल की ओर बढते हैं। यहाँ काल्पनिक बुद्धि का अस्तित्व नहीं है। योगी मानसिक निर्दोष धाराओं के परिणामस्वरूप उन परमात्मा के शब्द-संकेतों का विश्लेषण करता है, उसी के आधार पर साधक परमात्मा के पथ पर अग्रसर होता है तथा यही जीव-जगत् की क्रिया से त्राण दिलानेवाला मानवमात्र के लिए मुख्य कर्त्तव्य-पथ है। यह पथ पुण्यश्लोक महात्माओं के लिए ही नहीं, वरन् पापियों के लिए भी भवसागर के प्रवाह में मुख्य तरणी है। काल, कर्म, स्वभाव तथा अनन्त आशाओं से तृषित मानव काल के गाल से तभी त्राण प्राप्त कर सकता है जब इष्ट की वाणियाँ अंतर्प्रवेश प्राप्त करें और साधक उनका पालन करे।

प्राणी मात्र शान्ति चाहता है; किन्तु प्रकृति की अन्तर्धारा में उद्वेलित होता हुआ असह्य कष्ट ही झेलता है। जगत् का वरिष्ठतम जीव मानव भी स्पृहावश सुख-शान्ति की खोज में कभी इधर की ईंट उधर लगाता है, कभी लोहे का विशाल छड़ उस छोर से इस ओर ले आता है किन्तु अन्तत: प्रकृति की विषम परिस्थितियों की मृग मरीचिका में इतस्तत: खो जाता है। परन्तु उनमें से भी यदि किसी ने परम की सन्धि प्राप्त की है तो उसका आधार मनीषियों द्वारा निर्दिष्ट पथ का अनुगमन ही रहा है। महापुरुष देशकाल, लोकरीति की परिधि से परे तथा आत्मदर्शी, समवर्ती होते हैं। इन्हीं महापुरुषों के माध्यम से भगवान की वाणी मुखरित होती आयी है। निर्देश प्रभु का था, किन्तु उसे बाइबिल में महात्मा ईसा ने व्यक्त किया कि– ''उस पिता ने कहा कि बगीचे को केवल देखते भर रहना, फल मत खाना।'' महात्मा मुहम्मद द्वारा कुरान ने खुदा का हुक्म फरमाया। भगवान की उसी

वाणी को संजय ने सुना। वेद की ऋचाओं में महात्माओं ने उन्हीं प्रभु के स्वर को परखा। भगवान के शब्दों को मनु हाथ जोड़े सुन रहे थे। 'गगन महल पिया गोहराइन'– उस आवाज को कबीर तन्मय होकर सुन रहे थे। गीता तो पूरी-की-पूरी भगवान ही बोले। बाल्मीकि, तुलसी इत्यादि ने उन्हीं शब्दों का संकलन पाया। मूसा इत्यादि ने उसी वाणी के आश्रित चलकर अवतार की स्थिति प्राप्त किया। अतः भगवत्-पथ के पथिकों के लिए परमात्म-तत्त्व के निर्देशन विशिष्ट स्थान रखते हैं। उन निर्देशनों के संचार के बिना साधना का सही अर्थों में प्रारम्भ ही नहीं होता– ऐसी साधना का शुभारम्भ जो प्रकृति का पूर्ण विलय करानेवाली और परमात्म-स्वरूप में स्थिति दिलानेवाली है।

सन्तों की उपलब्धि में भक्त के पुण्य-पुंज का विशेष सहयोग रहता है– 'पुण्य पुंज बिनु मिलहिं न सन्ता।' पुण्य-पुंज जब तक साथ नहीं देता तब तक संत अर्थात् सद्‌गुरु नहीं मिलते। न मिलने का तात्पर्य यह नहीं है कि वे दिखलायी नहीं देते। वे दिखलायी तो पड़ते हैं किन्तु हमारे अन्तर से उनकी कोई पहचान नहीं होती। जिन आँखों से सन्त अर्थात् सद्‌गुरु पहचाने जाते हैं, वह दृष्टि पुण्यमयी है। जन्म-जन्मान्तरों का संचित पुण्य वर्तमान में साथ दे तभी संतदर्शन करानेवाली दृष्टि सम्भव है। हाँ, उपलब्धि नहीं है, पुण्य की कमी है तो उसका अर्जन करें।

भगवान मन-बुद्धि से परे होते हैं। मन-बुद्धि से सर्वथा उपराम होने पर ही योगी उनके परात्पर स्वरूप का दर्शन पाता है तथा उन्हीं की स्थिति में अवस्थित होता है। उनको हम मन, बुद्धि से माप नहीं सकते। बुद्धि तो किसी-न-किसी कल्पना का ही सृजन करती है कि वे कैसे बोलते हैं? कैसे बैठते हैं? क्या खाते हैं? क्या करते हैं? इत्यादि। वस्तुतः उन समर्थ सद्‌गुरु को हम इन चर्मचक्षुओं से नहीं देख सकते। उनकी परख पुण्य-पुंज से ही संभव है। जन्म-जन्मान्तरों का पुण्य जब वर्तमान में उदय होता है, तब वे जिस सिंहासन पर बैठते होंगे या जिस कीचड़ में लोटते होंगे– मिल जायेंगे। हम उनके हो जायेंगे और उनके द्वारा हमारे अंतस्प्रेरणा पथ का संचालन होने लगेगा, जिससे हम साधन में प्रवृत्त हो जायँ।

सम्प्रति उनकी प्राप्ति के लिए दो-ढाई अक्षर के किसी एक नाम, जैसे– राम, ॐ, शिव में से किसी एक को लें और उसका प्रतिदिन नियम से आँख खुलने तथा रात्रि में शयन से पूर्व दस-पन्द्रह मिनट अवश्य स्मरण करें तथा उसी के अर्थस्वरूप सद्गुरु का पाँच-सात मिनट चिन्तन भी करें। इष्ट के स्वरूप को सामने खडा करें। हो सके तो उन्हें हृदय में उत्फुल्ल नेत्रों से देखें। यदि ऐसा न हो सके तो मानसिक चिन्तन से समर्पण, नमन, मानस पूजन नियमित रूप से करते जायँ। यही अभ्यास साधना का प्रशस्त पथ आने पर स्वतः परिवर्तित हो जायेगा। ऐसा क्यों? कारण यह है कि उस इष्ट की वास्तविक पकड़ को सभी सहसा नहीं पा सकते। इसीलिए पूर्व मनीषियों ने कल्याणकारी भाव की पुष्टि के लिए देवी-देवताओं के अस्तित्व को स्वीकार किया तथा कराया। अभ्यास का यह क्रम दीर्घकाल तक चलता रहेगा। इसी के परिणामस्वरूप मूल साधन के प्रशस्त पथ पर साधक खड़ा हो पाता है– जहाँ उठना-बैठना, सोना-जागना तथा साधक कब भजन करता है, कब नहीं– यह सभी इष्ट के निर्देशों पर निर्भर हो जाता है।

साथ ही नियम की अनिवार्यता पर भी दृष्टि रहे। जिस प्रकार भोजन, शयन इत्यादि नित्य क्रियाएँ अनिवार्य हैं, वैसे ही नियम की भी अनिवार्यता समझनी चाहिए। साथ ही यदि कोई साधनपरायण पुरुष का सान्निध्य प्राप्त हो सके तो उनका सत्संग, यथाशक्ति सेवा की नितान्त आवश्यकता रहती है। वे कैसे हैं– यह न देखें। इसी मूल निष्कर्ष को गोस्वामी जी ने भी अभिव्यक्त किया है–

एक घड़ी आधी घड़ी, आधी में पुनि आध।
तुलसी संगति साधु की, हरै कोटि अपराध।।

चलते-फिरते, उठते-बैठते प्रतिक्षण भगवान का नाम याद आया करे– यहाँ तक साधक को स्वयं उठना पड़ता है, फिर तो भगवान थाम लेते हैं। वे दीनबन्धु जन की बागडोर अपने हाथ में ले लेते हैं। जिस कर्म में साधक का कल्याण निहित है, उससे वही कराते हैं– जिसका नाम योग है। योगेश्वर श्रीकृष्ण के शब्दों में यह असाध्य और दुरूह नहीं है।

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।। (गीता, २/४०)

इस निष्काम कर्मयोग में आरम्भ का बीज भर पड़ जाय तो कभी नाश नहीं होता। विपरीत फलरूपी दोष भी नहीं होता कि स्वर्ग इत्यादि विभूतियों में उलझाकर शाश्वत स्वरूप से विलग कर दे। इस निष्काम कर्मयोग के धर्म का थोड़ा भी साधन जन्म-मरण के महान् भय से उद्धार करनेवाला होता है।

अतः आप जिज्ञासुओं से निवेदन है कि इस अमरबीज का वृक्षारोपण कर आवागमन के भयंकर भय से आप स्वतः विश्वेश पादाम्बुज दीर्घ नौका तैयार कर भवसागर पार कर लें। साधकों के प्रोत्साहन एवं क्रियात्मक निर्देशन के लिए पुस्तक के अन्त में प्रेरक दोहों का भी समावेश कर दिया गया है, जिससे पाठक लाभ उठावें।

— सद्गुरु कृपाश्रयी जगद्बन्धु
स्वामी अड़गड़ानन्द

कुण्डलियां

कुछ पल अपलक देख लूँ, जेहि उर शंभु समाई।
गुरु अनुहारत ना मिला, कैसे छूटै काई।।

कैसे छूटै काई, आई बाल सफेदी।
अन्तर बल की सुधि नहीं, कर सोहाग की मेंहदी।।

अन्तर अश्रुधार बहै, बाहर लखै न कोई।
दर्शन कारण तुव जीयों, स्वरूप में रोई।।

आशिष अन्तर में सदा, दात दीन्हि मुनिराई।
गुरु अनुहारत ना मिला, (तो) कैसे छूटै काई।।

अंक दर्शक

चित्र संख्या १

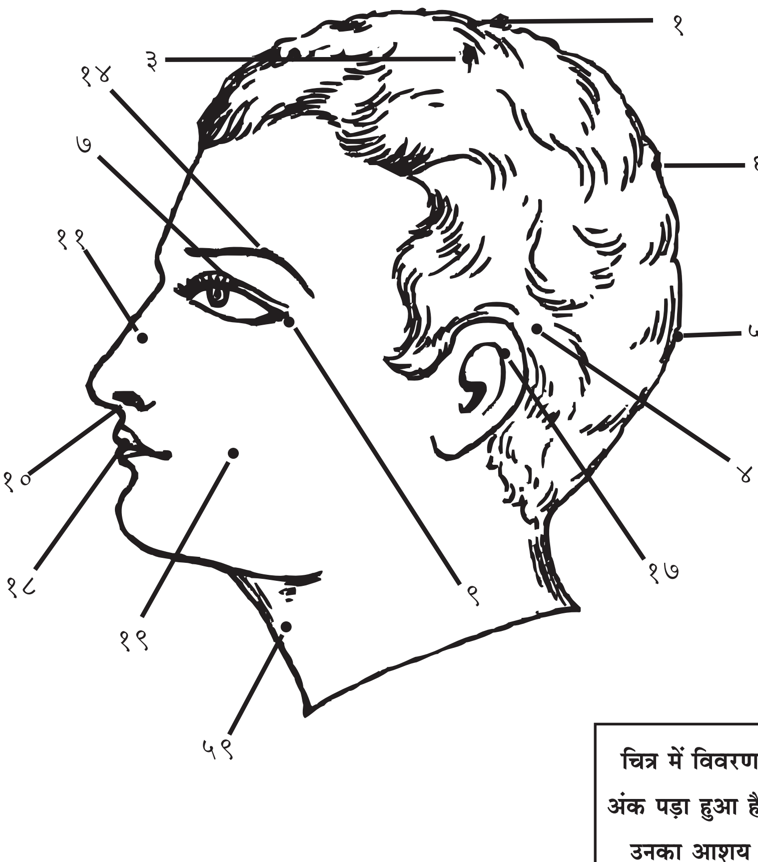

चित्र में विवरण अंक पड़ा हुआ है। उनका आशय दोहे/चौपाइयों की संख्या से समझें।

अंक दर्शक

चित्र संख्या २

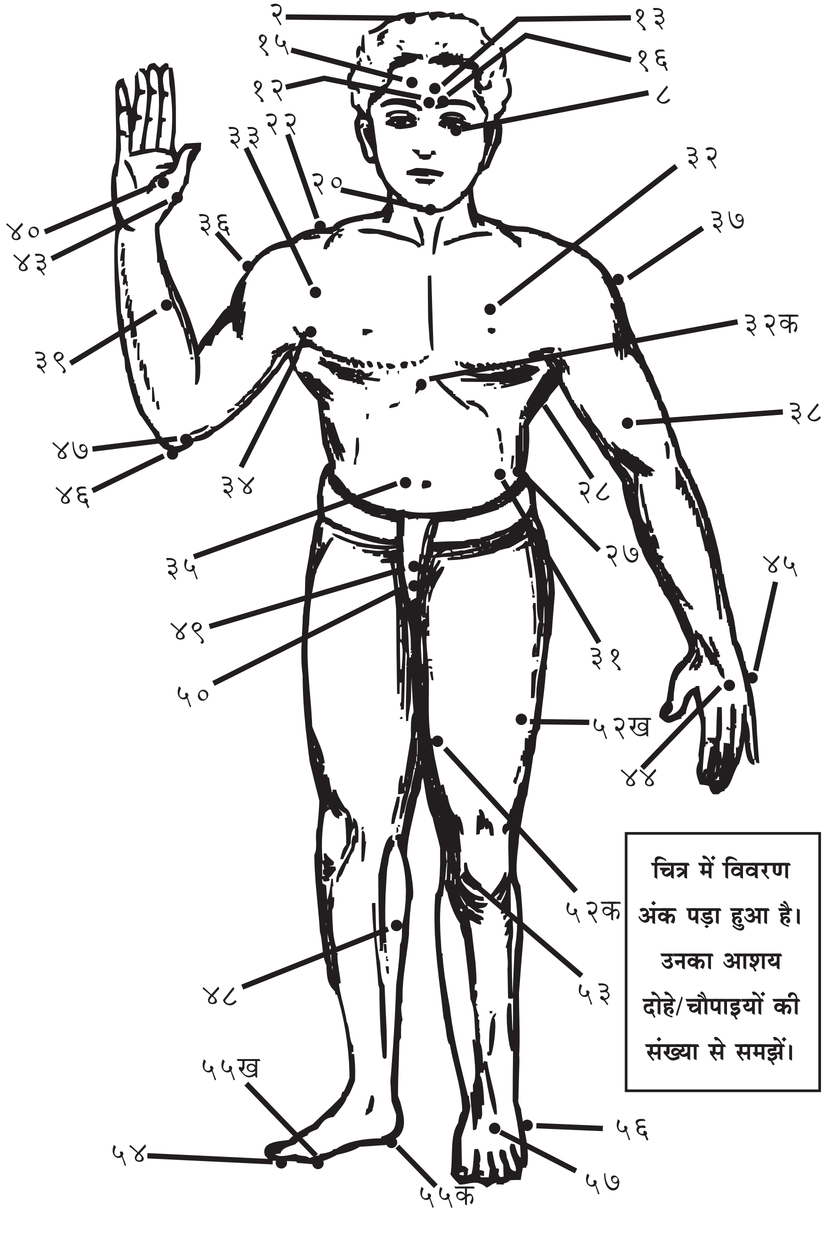

चित्र में विवरण अंक पड़ा हुआ है। उनका आशय दोहे/चौपाइयों की संख्या से समझें।

अंक दर्शक

चित्र संख्या ३

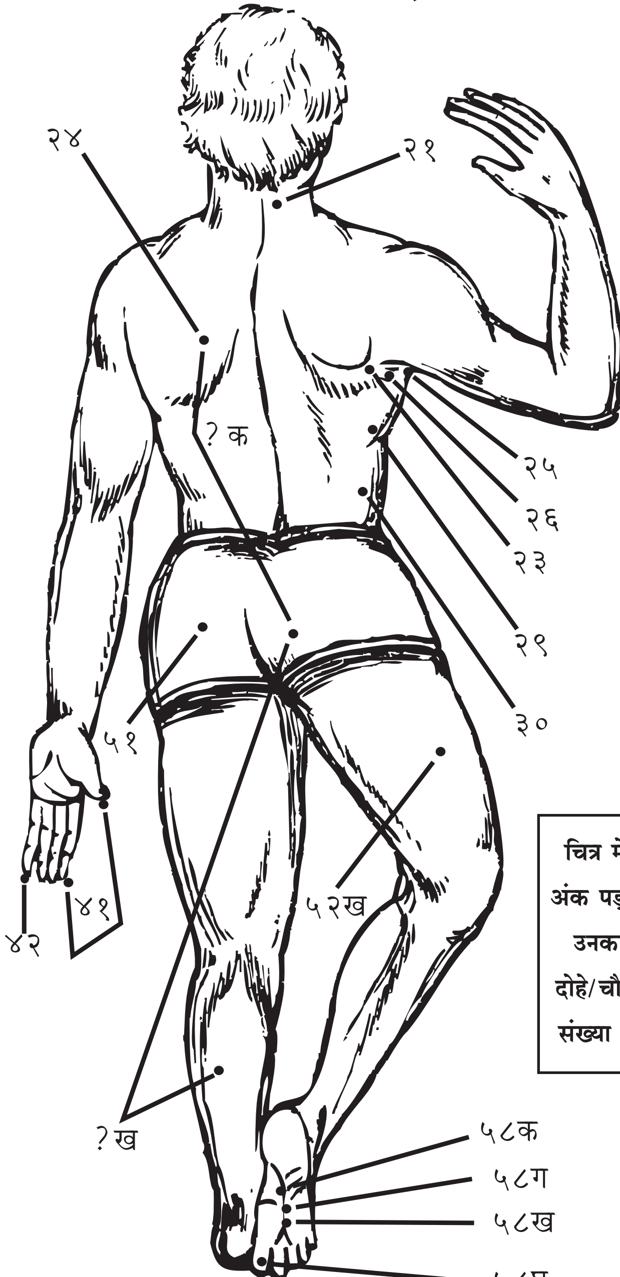

चित्र में विवरण अंक पड़ा हुआ है। उनका आशय दोहे/चौपाइयों की संख्या से समझें।

बिन्दु निर्देशक

अंग स्फुरण के वैज्ञानिक विश्लेषण के परिवेश में विभिन्न अंग-स्पन्दनों का यथार्थ परिज्ञान विशिष्ट महत्व रखता है। प्रस्तुत कृति के दोहों-चौपाइयों में प्रयुक्त शब्द संतवाणी का कृपा-प्रसाद तथा उनकी अनुभूति है, जिसमें भाषा सौष्ठव तथा उसके अलंकरण का प्रयोजन गौण एवं मूल विषय-वस्तु का अवतरण ही प्रधान है। शरीर के विभिन्न अंगों के लिए प्रस्तुत कृति में प्रयुक्त ठेठ हिन्दी के अनेक स्थानीय शब्दों का आशय स्पष्ट करने तथा स्फुरण के इन स्थलों की शरीर में स्थिति प्रदर्शित करने के लिए तीन रेखाचित्र संलग्न हैं। इनमें शरीर के बायें अथवा दाहिने अंगों पर एक-एक बिन्दु हैं। तीर से इन बिन्दुओं की विभिन्न संख्याओं का निर्देश अंकित है। संख्या निर्दिष्ट स्थलों की जानकारी के लिए अग्रलिखित अंक दर्शक शीर्षक देखें।

उपर्युक्त बिन्दु शरीर के बायें अथवा दायें भाग पर केवल एक ओर अंकित हैं जिसमें उस स्थल के दाहिने और बायें ओर के अंग-संकेत निहित हैं। उदाहरणार्थ, दाहिने हाथ की नाड़ी उसी स्थान पर होगी जैसा कि बायें हाथ में अंकों द्वारा चित्र में प्रदर्शित है। दायें-बायें का यह क्रमागत भेद पदतल से शीशपर्यन्त सभी अंग-स्थलों के लिए समझना चाहिए।

अंक दर्शक

१. शीश मध्य– इस स्थान को बिन्दु संख्या एक से जानें।

२. शीश मध्य का कुछ दाहिना भाग दैवी प्रवृत्ति को सम्बोधित करता है। इसे बिन्दु संख्या दो से मिला लें।

३. शिर के मध्य से बायाँ भाग मायिक वृत्तियों का सूचक है। बिन्दु संख्या तीन से इसे बताया गया है।

४. कान का ऊपरी भाग बिन्दु संख्या चार से मिलावें।

५. शिर के पीछे उठनेवाली हड्डी (मूर्धा) को बिन्दु संख्या पाँच से दर्शाया गया है।

६. शीश मध्य और उपर्युक्त मूर्धा के बीच का स्थान बिन्दु संख्या छः से खोजें।

७. नेत्र की ऊपरी पलक संख्या सात से जानें।

८. नेत्र की निचली पलक को बिन्दु संख्या आठ से सम्बोधित किया गया है।

९. कान की तरफ आँख के कोने को बिन्दु संख्या नौ से मिला लें।

१०. नासिका के बाहरी छोर के आसपास का स्थान बिन्दु संख्या दस से जानें।

११. नासिका की लम्बाई के बीच का स्थान बिन्दु संख्या ग्यारह से बताया गया है।

१२. दोनों भौंहों के बीच त्रिकुटी (तिलक स्थान से बालों की ओर का स्थल) बारहवें बिन्दु द्वारा संकेतित है।

१३. त्रिकुटी की बायीं ओर एक अंगुल हटकर अथवा दाहिनी ओर हटकर ललाट में स्पंदन स्थल संख्या तेरह से इङ्गित किया गया है।

१४. भौंह को बिन्दु संख्या चौदह से मिला लें।

१५. दायाँ-बायाँ ललाट बिन्दु संख्या पन्द्रह से जानें।

१६. नाक के पास दायीं-बायीं भौंह समझने के लिए बिन्दु संख्या सोलह से सम्पर्क स्थापित करें।

१७. कर्ण स्पंदन के अनेक सूक्ष्म भेद हैं जिसे साधन स्तर की प्रायोगिक क्रिया में समझा जाता है। यहाँ पर उसके एक प्रमुख भेद का प्रदर्शन बिन्दु सत्रह पर देखें।

१८. दाहिने-बायें होंठ का स्थान बिन्दु संख्या अठारह से जानें।

१९. दायें-बायें गाल का स्थान उन्नीसवें बिन्दु पर देखें।

२०. ठोढ़ी को बीसवें बिन्दु पर जाँच लें।

२१. गर्दन का पृष्ठ भाग इक्कीसवें बिन्दु पर अंकित है।

२२. दायाँ कन्धा इष्ट प्रेरित स्थल तथा वाम स्कंध का माया प्रेरित स्थल बाइसवें बिन्दु से मिलावें।

२३. पृष्ठ भाग में स्थित, हाथ को जोड़नेवाली चौड़ी-सी हड्डी को पखौरा कहते हैं। इसकी नोंक को बिन्दु संख्या तेईस पर देखें।

२४. छोटे-छोटे बिन्दुओं के बीच दायें-बायें पीठ को बिन्दु संख्या चौबीस से जान लें।

२५. काँख के आध्यात्मिक स्थल को बिन्दु पचीस से जानें।

२६. अध्यात्म-स्थल का सहयोगी यह स्थल काँख से चार अंगुल हटकर पीठ में बिन्दु संख्या छब्बीस से दिखाया गया है।

२७. भजन का स्थान बिन्दु सत्ताइस द्वारा कमर में देखें।

२८. कमर के भजन स्थल एवं काँख के आध्यात्मिक स्थल के बीच तन का स्थान पसलियों के ठीक बीच में बिन्दु संख्या अट्ठाइस में खोजें।

२९. तन स्थान (बिन्दु अट्ठाइस) से दो-चार अंगुल पीठ में हटकर स्फुरण का स्थल उन्तीसवें बिन्दु द्वारा इंगित है।

३०. कटि में भजन-स्थान (बिन्दु २७) से तीन-चार अंगुल पीछे का स्थान बिन्दु संख्या तीस से जानें।

३१. भजन-स्थान से तीन-चार अंगुल पेट की ओर का स्फुरण बिन्दु संख्या इकतीस से दर्शित है।

३२. संख्या बत्तीस से सीना मिला लें।

३२. क. छाती और उदर के सन्धि-स्थल के मध्य भाग का स्पन्दन स्थल बिन्दु संख्या ३२ क से मिला लें।

३३. बाहु और सीने की सन्धि-स्थली से ऊपर की ओर दो-तीन अंगुल का स्पन्दन स्थान बिन्दु संख्या तैंतीस से जानें।

३४. सीना और बाहु की सन्धि बिन्दु संख्या चौंतीस से मिलावें।

३५. नाभि के आसपास पेट का भाग बिन्दु पैंतीस से शोध करें।

३६. कन्धे से दो-ढाई अंगुल नीचे बाँह का स्पन्दन स्थल बिन्दु संख्या छत्तीस पर देखें।

३७. बायें कन्धे के माया स्थल से दो-ढाई अंगुल हाथ पर फड़कने का स्थान बिन्दु सैंतीस से मिला लें।

३८. दाहिनी भुजा की मांसपेशी का निचला मोटा एवं गोलाई का स्थान अड़तीसवें बिन्दु से पहचानें।

३९. कलाई का ऊपरी भाग (नाड़ी) उन्तालीसवें बिन्दु पर देखें।

४०. अंगुष्ठ की पार्श्ववर्ती गदेली बिन्दु चालीस से जानें।

४१. तर्जनी तथा अंगूठा का छोर संख्या इकतालीस से शोध करें।

४२. कनिष्ठा बिन्दु बयालिस में उल्लिखित है।

४३. हथेली के अन्दर छिपा हुआ अंगूठे का एक इञ्च स्थान बिन्दु संख्या तैंतालीस में द्रष्टव्य है।

४४. हथेली के पृष्ठ भाग को बिन्दु चौवालीस प्रस्तुत करता है।

४५. कनिष्ठा से हथेली के किनारे-किनारे मणिबन्ध रेखा तक का स्थान बिन्दु पैंतालीस से अभीष्ट है।

४६. हाथ मोड़ने पर कुहनी की बड़ी नोंक जानने के लिए बिन्दु छियालीस पर दृष्टिपात करें।

४७. हाथ मोड़ने पर कुहनी की छोटी हड्डी की नोंक (अलनर ज्वाइन्ट) को बिन्दु सैंतालीस से मिलावें।

४८. पाँव की पिण्डली (नल्ली में स्थित मांस की गोलाई) का स्थान अड़तालीसवें बिन्दु से पहचानें।

४९. जननेन्द्रिय बिन्दु उनचास पर प्रदर्शित है।

५०. (क) अंडकोश का स्थल पचास 'क' पर देखें।

(ख) संकेत के अभाव में इसी प्रचलित नाम से गुदा के किनारों को जानें।

५१. कूल्हे के नीचे बैठने का स्थान (चूतड़, हिप) का संकेतक बिन्दु इक्यावन है।

५२. (क) जाँघ का ऊपरी भाग बिन्दु बावन 'क' से जानें।

(ख) जाँघ का अन्तर्भाग बिन्दु बावन 'ख' से समझें।

?. (क) बायाँ पीठ और दाहिना आसन स्थान प्रश्नवाचक चिन्ह 'क' पर देखें।

(ख) बायें पैर की पिण्डली से पार्श्ववर्ती चिन्ह और दाहिना आसित (हिप) को प्रश्नवाचक चिन्ह 'ख' से जानें।

५३. घुटने के स्थान में कई भेद हैं। यहाँ केवल एक मुख्य स्पन्दन का वर्णन है। मुख्य स्थल को बिन्दु तिरपन से ज्ञात करें।

५४. तल बगली-अंगूठे में भजन का स्थान बिन्दु चौवन में ढूँढ़ें।

५५. (क) एड़ी मूल का मिलान बिन्दु पचपन 'क' से करें।

(ख) अँगूठे की ओर तलवा के बगल पंजे पर लगन का निर्णायक स्थान पचपन 'ख' से जानें।

५६. पाँव के तलवे के बगल का भाग (कनिष्ठा से एड़ीपर्यन्त) बिन्दु छप्पन से मिलान करें।

५७. तलवे के ऊपरी भाग का मिलान बिन्दु सत्तावन से करें।

५८. एड़ी तथा पंजे के बीच दबे स्थान में कमल रेखा बिन्दु ५८ 'क' से ज्ञात करें। इससे स्पर्श करते हुए दायें-बायें ५८ ख, ५८ ग, बायें ५८ घ के बिन्दुओं का मिलान करें।

५९. ठोढ़ी और सीने के बीच का स्थान (गला) बिन्दु संख्या उनसठ से मिलावें।

।। ॐ ।।

अंग क्यों फड़कते हैं? क्या कहते हैं?

दोहा– स्वयं शरीरा जल गया, जेहि मन इच्छा जार।
अनुभव स्थल संत हैं, बुद्धि मते संसार।।

भावार्थ– सतत् साधना के परिणामस्वरूप जब मन की इच्छाओं का समूल अन्त हो जाता है, तब स्वयं शरीरों का विलय हो जाता है। स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण– तीनों शरीरों के मायाजन्य बन्धन, शुभाशुभ संस्कारों का क्षय हो जाता है। सन्त अनुभवों के स्थल, अनुभव के अत्यन्त सूक्ष्म पहलुओं के आश्रित चलता है, जबकि संसार विशिष्ट बुद्धि के सहारे चलता है।

दोहा– प्रभु तुष्टत ही यंत्र है, सब तन आदि व अन्त।
संशोधन शुभ योग में, नख शिख साधे सन्त।।

भावार्थ– सद्‌गुरुदेव की जागृति के परिणामस्वरूप जब इष्ट प्रभु द्रवित एवं संतुष्ट हो जाते हैं तब यह सम्पूर्ण तन (आदि-अन्त, नख-शिखपर्यन्त यन्त्र के रूप में परिवर्तित हो जाता है। इस यन्त्रमयी उपलब्धि से शुभ एवं कल्याणमयी यौगिक क्रिया का भलीभाँति संशोधन मिलने लगता है। इसी के माध्यम से सन्तजन नख-शिख इन्द्रियों से सब साध लेते हैं।

दोहा– कौन प्रयोजन तन गति, केहि विधि हरि दरसात।
प्रतिशत अविनाशी कथा, हरी करै बरसात।।

भावार्थ– *प्रश्न–* वह कौन-सा विशेष प्रयोजन है जिसकी पूर्ति हेतु तन में गति एवं फड़कन होती है? वह कौन-सी विधि-विशेष है जिससे हरि-दर्शन सुलभ है?

उत्तर– वस्तुतः उन अविनाशी, अजन्मा परब्रह्म परमात्मा की कथा एवं उनकी जानकारी का विस्तार भगवान स्वयं कराते हैं, जिससे उनको प्रत्यक्ष जाना जाता है। उन प्रभु के प्रत्यक्ष दर्शन का विधान है।

दोहा– भक्त हेतु नर तन धरे, जन की पावन रीत।
परम भक्त तन में हरी, अन्य भरम परतीत।।

भावार्थ– परम भक्त के शरीर (नर-तन) को हरि ग्रहण कर लेते हैं, यही अवतार का शाश्वत विधान है। अन्यत्र अवतरण की परिकल्पना भ्रामक विश्वास की प्रतीति है। यही नर-तन की भी वास्तविक परिभाषा है।

दोहा– जो सोचत है होयगा, माया थल अवतार।
ते भ्रम भूले भार में, माया भार अभार।।

भावार्थ– जो लोग ऐसा सोचते हैं कि मायिक स्थल भू-भाग विशेष में अथवा काल-विशेष में परमात्मा का अवतार होगा, वे वस्तुतः भ्रम में पड़े हुए हैं तथा समग्र माया के असह्य भार से दबे पड़े हैं।

दोहा– अंग फड़कन से देत हरि, जन को शुभ संदेश।
सो विधि हरि संदेश की, कथा सुनावउँ लेश।।

भावार्थ– भक्तों के परम आश्रय, चरमोत्कृष्ट लक्ष्य हरि अपने जन को अंग फड़कन के माध्यम से शुभ एवं अभिराम सन्देश देते हैं। भगवत्-सन्देश की इस विशेष विधि का मैं संक्षेप में वर्णन कर रहा हूँ।

दोहा– परमधाम का पथ चले, बीच न राखे लेश।
सद्गुरु की संगत करे, मिले सदा सन्देश।।

भावार्थ– उस विधि-विशेष के माध्यम से परमधाम परमात्मा का पथ सुलभ होता है, जिसमें लेशमात्र भी अन्तर कभी नहीं होता। किन्तु उस शाश्वत तथा अमिट सन्देश की प्राप्ति का माध्यम अनुभवी, परिपूर्ण सद्गुरु का सान्निध्य एवं संगति है। अतः चिन्तन से उनके चरणारविन्द में अर्पित होने से ये संकेत सम्भव हैं।

दोहा– कौन बोध दे का कहे, केहि विधि जन के संग।
पावन अनुभूती महा, जन पावे सत संग।।

भावार्थ– उपर्युक्त सन्देश कौन-सा बोध देता है? क्या कहता है? और किस विशेष विधि के माध्यम से जन के संसर्ग में रहता है?– इस परम पावन महान् अनुभूति का प्रसार सत्संग में सतत अवगाहन करनेवाला जन ही समझ पाता है।

चौपाई– परम तत्वमय सुरति न भाई।
सुरत विलीन परम सिधि पाई।।
क्रमशः चलि पर परस अनूपा।
तत्क्षण परमारथ पथ भूपा।।

भावार्थ– हे भ्राताओ! उस परमतत्त्वमयी स्वरूप में सुरति की क्रिया भी नहीं होती। वस्तुत: उस क्रियात्मक सुरति के विलीनीकरण के उपरान्त परमसिद्धि, परमतत्त्व परमात्मा की उपलब्धि सुलभ होती है। क्रमश: चलते-चलते मानव उस अनुपम महापुरुष का स्पर्श पाता है और स्पर्श के साथ ही तत्क्षण वह परमार्थ पथ का सम्राट हो जाता है। वही योगायोग के रहस्य का ज्ञाता, परमयोगी, योगिराज कहलाता है।

चौपाई– भूप अनूप पुन्य बिनु नाहीं।
सो सतगुरु पर परसि मिलाहीं।।
ऐसे गुरु उर परसत जाहीं।
ता उर निशिदिन अनुभव माहीं।।

भावार्थ– उपर्युक्त निरुपम योगिराज स्वरूप की उपलब्धि पूर्वपुण्य के बिना नहीं मिलती। इस उपलब्धि का श्रेय सद्गुरु को है। वे परम का स्पर्श कराकर साधक को उस स्थिति से मिला देते हैं। ऐसे प्रत्यक्षदर्शी, तत्त्वस्थ महापुरुष सद्गुरु जिसके हृदय-देश से संचारित होते हुए पथ की कठिनाइयों से अवगत कराते हैं, उस पुरुष का हृदय अहर्निश अनुभव से ही ओतप्रोत रहता है।

दोहा– अनुभव में अलखित लखे, गुरु हरि एकै रंग।
पाद तले से शीश तक, कर विलास मन संग।।

भावार्थ– अनुभव मन तथा बुद्धि का विषय नहीं है। यह तो परमतत्त्व परमात्मा तथा सद्गुरु की समग्र प्रेरणा है जिसका संकेत इष्ट का निर्देशन है। यद्यपि वह ब्रह्म अलख, अवाङ्मनसगोचर अर्थात् वाणी, मन अथवा इन्द्रियों का विषय नहीं है, फिर भी इस अनुभवी संचार के माध्यम से वह अलख परमतत्त्व भी देखने में आता है। इस अनुभवी संचार में हरि और गुरु एक दूसरे के पर्याय हैं जिसमें स्फुरण का स्थान पाँव के तलवे से लेकर शीर्ष शिखापर्यन्त समान है, जिसमें समय का विलास-स्थान है। क्रमशः वह विलास इतना सूक्ष्म हो जाता है कि साधना के एक स्तर पर मन की तरंगों के साथ-साथ होने लगता है।

शब्दार्थ– विलास करना = फड़कना।

चौपाई– सो सब भेद विलग कर शाखा।
कतिपय अन्तर जनहित भाखा।।
शीश[1] मध्य फरकत जन जाना।
ईश संयोग बचन सुख साना।।

भावार्थ– वह समस्त भेद-प्रभेद अलग-अलग भावों में उनके शाखा-प्रशाखा के कतिपय अन्तर के साथ जन (भक्त) के हित में कहूँगा जिससे वह अपनी स्थिति समझकर चले। साधक के शिरमध्य स्पन्दन ईश्वर-संयोग का सूचक है। ब्रह्म-सम्बन्धी किसी कार्य में प्रगति होगी। अर्थात् यह प्रेरक का शुभ सूचनार्थ संकेत है।

चौपाई- शीश मध्य कछु[2] दाहिन होई।
ब्रह्म संयुक्त वचन कह सोई।।
मध्य भाग सिर[3] बाम प्रचाला।
माया जानत संत कृपाला।।

भावार्थ– साधना की उपर्युक्त उच्चतम स्थिति की अपेक्षा निचली भूमिकाओं में कुछ दाहिना रुख रखते हुए शीश के मध्य में स्फुरण ब्रह्म से संयुक्त प्रवाह को इङ्गित करता है। केन्द्र से कुछ बायीं ओर हटकर फड़कना मायिक प्रवाह की प्रधानता का प्रतिपादक है– ऐसा कृपासागर सन्तों ने जाना है।

दोहा– कान ऊपरी[४] भाग में, फड़कत सीधी चाल।
दाहिन बोले सुख सदा, बाम बोल दुःख हाल।।

भावार्थ– कान के ठीक ऊपरी नोंक से सटे शिर में (टेम्पोरल बोन के आसपास) जब सीधी चाल दाहिनी ओर फड़के, तो वह संकेत सुखद एवं इसी प्रकार बायीं ओर का स्पन्दन दुःखद होता है।

चौपाई– शीश भाग[५] पाछिल प्रभु थामा।
फरकि दाहिना कबहुँ कि बामा।।
दाहिन सिद्ध दरस शुभ होई।
बाम फरक बाधा कह कोई।।

भावार्थ– शीश के पिछले भाग की उभरी हुई हड्डी का मध्य भाग जिसे मूर्धा कहते हैं (सेन्टर ऑफ आक्सिपिटल बोन) के फड़कने से और उसके दायें-बायें के स्पन्दन से सिद्धावस्था का दिग्दर्शन होने लगता है। मूर्धा में जरा-सा बायाँ रुख लेकर फड़कना छोटी-बड़ी बाधाओं का ज्ञापक है। इसके ठीक विपरीत दाहिनी ओर के स्फुरण से प्रमाणित होता है कि कोई बाधा नहीं है, सिद्धता है। वे दीनबन्धु इष्ट सद्‌गुरु दीर्घकालीन अभ्यास से जब प्राप्य हो जाते हैं तब प्राप्ति समर्थक स्थानों पर आदेश देते हैं और सिद्धस्थली में प्रभु ही बोलने लगते हैं। फड़कनों से केवल इष्ट-आदेश ही समझना चाहिए।

चौपाई– शिव-शक्ति का स्पन्दन शाखा।
ब्रह्म ज्ञान शुभ शक्ती जाका।।
फरकत मध्य पृष्ठ के बीचा[६]।
दाहिन सत्य बाम कछु नीचा।।

भावार्थ– शिर के ठीक ऊपरी भाग ब्रह्मस्थान और पीछे का स्थान मूर्धा के मध्य की दूरी आठ अंगुल पड़ती है। इस स्थान पर फड़कने से ज्योतिर्लिंग पार्थिव स्वरूप शंकर, वह परमात्मा पार्थिव जड़तत्त्वों से बने स्थूल शरीर से परिलक्षित होते हैं। वे सीमाओं से अबाधित हैं इसीलिए शिव शब्द से सम्बोधित हैं। मूर्धा से चार अंगुल ऊपर फड़कने से इस शरीर में परमतत्त्व का पूरक, ब्रह्म की स्थिति रखनेवाला वह ब्रह्मज्ञान अपने शाखा-प्रशाखाओं में मिलने लग जाता है। उस शिव एवं शक्ति को आत्मानुभूत ब्रह्मज्ञान का उत्कर्ष तथा प्रत्यक्षीकरण समझें।

दोहा– मध्य कहत हौं शीश के, पृष्ठ विभाजन शीश।
सदा सत्य मन साध रत, पावन पथ गुरु ईश।।

भावार्थ– उपर्युक्त पृष्ठभाग शिर के ही पिछले हिस्से को समझना चाहिए और मध्य भाग भी शिर का केन्द्र-स्थल है। भजन-सम्बन्धी व्रत ही व्रत है; अन्य कुछ भी नहीं। यह ईश्वर-अर्पण व्रती के लिए सदैव सत्य है। वस्तुतः ईश्वर ही साधक के हृदय-देश में रथी होकर उसे भजन में प्रवृत्त करते और निरन्तर उसका नियमन करते चलते हैं।

चौपाई– दाहिन नेत्र दरस सुधि सुन्दर।
या प्रत्यक्ष सन्त सुख मन्दिर।।
बाम चलत शुभ दरसन नाहीं।
पथ विरोध बहु रूप लखाहीं।।

भावार्थ– दक्षिण नेत्र का स्फुरण शुभ दर्शन, स्थितप्रज्ञ महापुरुष के दर्शन का द्योतक है। वाम नेत्र का स्पन्दन भगवत्पथ विरोधी जीव-जन्तु, कुसंगति, अशुभ दर्शन का परिचायक है।

चौपाई– ऊपर[७] पलक ऊपरी देखा।
शुभ कर्त्तार कि अशुभ विशेषा।।
ऊपर पलक जगत बहु दर्शन।
शुभ कोइ रूप कि अशुभ अदर्शन।।

भावार्थ– आँख की ऊपरी पलक के फड़कने का तात्पर्य जगत् के विभिन्न स्वरूपों का दर्शन तथा वाम पलक के स्फुरण से अदर्शनीय अशुभ वस्तुओं का संयोग होता है।

दोहा– निम्न[८] पलक फरकन लगी, बायँ दायँ गति दोय।
हृदय सजातीय संग में, तथा विजातीय होय।।

भावार्थ– आँख की निचली पलक का स्फुरण सजातीय-विजातीय परिणामों को स्पष्ट करता है। दायीं फड़कन से हृदय की सजातीय और कल्याणकारी दैवीधारा का संग इंगित होता है। बायीं पलक का स्पन्दन हृदय के विजातीय भावों के संग में, अकल्याणकर आसुरी प्रवृत्तियों के प्रवाह में प्रवाहित होना सूचित करता है।

चौपाई– फरकत दाहिन परम प्रकासा।
अन्तर रूप सजातीय खासा।।
विजातीय विघ्नी रत होई।
बाम पलक कह सन्तन सोई।।

भावार्थ– सन्तों का ऐसा अनुभव-विशेष है कि दाहिनी पलक के स्पन्दन से परम प्रकाशमय सजातीय धारा का प्रवाह प्रचुर मात्रा में अन्तस्थल में होना प्रमाणित करता है। जब बायीं पलक नीचे फड़कती है तब विजातीय प्रवृत्ति विघ्नरत होती है।

चौपाई– आँखिन[९] कोना फड़कि सहारा।
देत सदा उर जीत कि हारा।।
कर प्रहार कि होत उबारा।
गोली गररर बम्ब प्रसारा।।

भावार्थ– कान की ओर आँख का कोना फड़कने से परम हितैषी प्रभु-प्रेरणा से हृदय-देश में जीत और हार का प्रबोध मिलता है। दाहिनी आँख का कोना जीत और बायीं आँख का कोना हार बताता है। साथ ही गोली, बम्ब, नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से अथवा इसी प्रकार के किसी

अन्य उपकरण से प्रहार होना भी बायीं आँख के कोने से तथा आक्रमण से बचाव दाहिनी आँख के कोने के स्फुरण से विदित होता है।

दोहा— दाहिन कतिपय रोक है, बाम गोलियों मार।
सब जग में दरसत रहै, विवुध धूम रुख रार।।

भावार्थ— दाहिनी आँख के कोने का स्पन्दन प्रहार की ऊँची-नीची (छोटी-बड़ी) मात्राओं का निर्देश करते हुए उसकी रोक, रक्षा का प्रणयन करता है। इसी प्रकार वाम नेत्र का यह स्थान विशिष्ट अस्त्र-शस्त्रों का प्रहार, उनका धुआँधार तथा उद्दाम घात-प्रतिघात प्रस्तुत करता है। यदि हरि-इच्छा है तो वह पुरुष कुछ ऐसा ही देखता है।

चौपाई— चिन्तन काल श्वास गति देखी।
कर संकेत नासिका नेकी।।
दायँ नासिका दे निरुवारा।
स्वाँस सुरत संगत सह धारा।।

भावार्थ— दाहिनी नासिका का (बाहरी छिद्र के आसपास का) स्पन्दन श्वास-प्रश्वास के यज्ञ की प्रवेशिका का ज्ञान कराता है। उस व्यक्ति के श्वास के सम होने पर कुतर्क के शमन की स्थिति जानी जाती है।

शब्दार्थ— नेकी (नेकु) = थोड़ा-सा।

चौपाई— अन्दर[१०] रुख स्वाँसा शुभ फरकी।
स्वाँस यज्ञ समकोण कुतर्की।।
सत प्रतिरोध नासिका बायीं।
माया मलिन प्रहार जनायी।।

भावार्थ— दाहिनी नासिका का बाहरी छिद्र (दाहिनी स्वाँसा) यदि अन्दर की ओर रुख रखते हुए फड़कता है तो श्वास पर श्वास का यज्ञ समान स्तर पर चलता है, जिसमें कुतर्क नहीं होता। यदि बायीं नासा फड़कती है तब माया का मलिन प्रभाव विजातीय परमाणु स्पष्ट होने लगता है, जो सत्य का अवरोधक है।

दोहा— बायीं फड़कन कहत है, स्वाँस माय संग दौड़।
फड़कि सचेतन देत हैं, आपन आश्रित मोड़।।

भावार्थ— बायीं नासिका फड़ककर स्वाँसा का माया के साथ चलना बताती है। इस प्रकार भगवान सभी अंगों के माध्यम से भक्त का अपबल, आपा मिटाते तथा उसे अपने अनुरूप मोड़ लेते हैं।

चौपाई— पूर नासिका कर दो भागा।
मध्यहि[११] फरकत जब चित जागा।।
दाहिन भजन युक्त चित रंगा।
बाम फड़क नासत सत संगा।।

भावार्थ— चलते-फिरते जब नासिका की लम्बाई के मध्य स्पन्दन होता है तो ऐसा समझना चाहिए कि चित्त जागृत है। उसका दाहिना भाग भजन की युक्ति में चित्त की अनुरक्ति इंगित करता है। इसके विपरीत बायीं फड़कन भाविक के सत्संग में ह्रास तथा चित्त के दूषित संकल्पों की परिचायिका है।

चौपाई— त्रिकुटी बीचो[१२] बीच सुलेखा।
हृदय विलोकहु गुरु कर रेखा।।
गुरुवर रूप देख उर माहीं।
क्रमशः ध्यान धरहिं मन आहीं।।

भावार्थ— त्रिकुटी के मध्य का स्फुरण शुभ लेख, शुभ संस्कारों का बोधक है। वह हृदय-देश में इष्ट-स्वरूप के ध्यान का निर्देश करता है। सद्‌गुरु का स्वरूप पकड़कर क्रमश: ध्यान में प्रवृत्ति प्रदान करता है। आशय यह है कि इसमें इतने लगन की आवश्यकता है कि अविलम्ब ध्यान में लग जाओ।

दोहा— ध्येय अरु ध्याता ध्यान में, मनवा इष्ट अनुरूप।
होवत ही फरकन लगे, त्रिकुटी अनुभवानूप।।

भावार्थ– त्रिकुटी के स्फुरण से ध्याता, ध्यान एवं ध्येय तीनों तद्‌रूप हो जाते हैं। मन प्रवृत्तियों सहित सिमटकर इष्ट के तद्‌रूप स्थिर हो जाता है।

चौपाई– त्रिकुटि[१३] अंश भर बाम प्रचाली।
तत्क्षण बाम वृत्ति चित जाली।।
ध्यान करत कहुँ दाहिन चाली।
लगिहै ध्यान यत्न करु हाली।।

भावार्थ– ध्यान में लग जाने तथा प्रयत्नशीलता की अवस्था में त्रिकुटी थोड़ा बायाँ लेकर स्पन्दित हो तो वह चित्त में बाह्य प्रवृत्तियों का उद्‌घोषक है। ध्यानकाल में सूत्र (सूत) मात्र त्रिकुटी के दायीं ओर स्पन्दन साधक की सफलता के लक्षणों का निर्देश देता है। अर्थात् ध्यान को पुष्ट करनेवाली वृत्ति सबल है, परिणामत: ध्यान लग जायेगा। साथ ही इससे प्रयत्न के लिये प्रोत्साहन मिलता है।

चौपाई– भ्रू[१४] विलास दाहिन शुभकारी।
भावि लाभप्रद जन सुखकारी।।
बाम विलास भावी कर हानी।
प्रकट पुरातन महिम बिलानी।।

भावार्थ– दाहिनी भौंह का स्पन्दन शुभ कृपा का द्योतक है और भविष्य में लाभ का परिचायक है। इसके फड़कने से साधक सुखानुभूति करता है। इसके विपरीत यदि बायीं भौंह फड़क उठी तो भविष्य में कोई हानि तथा उन पुरातन प्रभु की प्रकट महिमा पर भी आवरण सम्भव है।

दोहा– दाहिन बाम[१५]ललाट में, फरकत निज निजकार।
दायाँ निर्णय में मती, एक में मलिन विचार।।

भावार्थ– दायें-बायें ललाट का स्फुरण अपने अलग-अलग कार्यों को अभिव्यक्त करता है। बौद्धिक निर्णय की युक्तियुक्तता दाहिने ललाट से

तथा विचारों की मलिनता बायें ललाट के स्पन्दन से विदित होता है। जब सत्-असत् का निर्णायक अवसर उपस्थित होता है और सर्वतोभावेन असत्य को हम सच मानने लगते हैं तब बायाँ ललाट स्पन्दित होकर इस तथ्य का प्रकाशन करता है। इसके विपरीत जब हम सच को झूठ मानने लगते हैं, तब दाहिना ललाट फड़ककर यह बताता है कि आपका निर्णय गलत है।

चौपाई– कबहुँक जन चिन्तित मन भारी।
समुझि न परइ झूठ सतकारी।।
तब प्रभु मस्तक माहिं इशारा।
देत झूठ अरु दाहिन सारा।।

भावार्थ– कभी-कभी साधक सुखदायी सत्य और दु:खदायी असत्य का निर्णय नहीं कर पाता, बुद्धि विकल होकर भ्रमित हो जाती है, मानसिक मन्थन के इस द्वन्द्व में भावरत प्रभु बायें ललाट की फड़कन से झूठ को और दाहिने ललाट के स्फुरण से विचार की उपयुक्तता पुष्ट करते हैं।

चौपाई– निकट भविष्य कछु सुन्दर होनी।
भ्रू[१६] नासिका पास गत छोनी।।
मन गत हानि बाम ही जाना।
नाक पास सिहरन पहचाना।।

भावार्थ– नासिका के सन्निकट दाहिनी भौंह का स्पंदन आसन्न भविष्य (२४ घंटे के अन्दर) में घटित होनेवाली किसी शुभ घटना का द्योतक है। इसके ठीक विपरीत बायीं भौंह नासिका के सन्निकट फड़ककर मनोगत कार्य में गिरावट ला देती है। इससे साधक अपने को सँभाले और साधनरत हो जाय।

दोहा– दायाँ[१७] श्रवण सिहर जो, साथ देत रघुवीर।
जो कुछ वाणी जगत में, उठी साध्य सम सीर।।

भावार्थ– दाहिने कान के स्पंदन से जीव-जगत् की विषम परिस्थितियों एवं विषम वातावरण में भी साधनोपयोगी वाणी सुनने को मिल जाती है,

साथ ही उसे सुनने के लिए इष्ट की भी प्रेरणा विदित होती है। सारांश यह है कि भगवान पीछे छिपकर संकेत दे रहे हैं कि सुनने में अनसुनी मत कर देना।

चौपाई– बाम कान फड़के जब भाई।
तेहिं वाणी सुख सकल न साई।।
काहे न हो वह अमृत बोली।
कबहुँ न सन्त सुनें तेहिं तोली।।

भावार्थ– अमृततुल्य वाणी भी बायाँ कान फड़कने के बाद नहीं सुननी चाहिये। सन्तों के मत से ऐसी वाणी सुनने से समस्त सुखों का नाश करनेवाली भावना का गठन एवं विषम दु:खों का सृजन होता है।

चौपाई- दायाँ सिहर ओष्ठ[१८] जब होई।
वचन प्रसारहु गुरु रुख सोई।।
जो कहुँ बामहिं ओष्ठ प्रचाला।
चुप साधहू कष्ट तेहिं काला।।

भावार्थ– बोलने का अवसर प्राप्त होने पर तत्काल दायाँ ओठ फड़क जाय तो इसे सद्‌गुरु की अन्त:प्रेरणा समझनी चाहिए। अत: बोलना श्रेयस्कर है। इसके विपरीत बायाँ होंठ फड़कने पर बोलना अनिष्टकर है, अत: कदापि न बोलना चाहिये। कदाचित् इसकी अवहेलना की गई तो आज्ञा उल्लंघन के अपराध में इष्ट की नाराजगी ही हाथ लगेगी।

दोहा– विधु पियूषमय वचन शुभ, गाल फड़क[१९] जो दहिन।
बाम चलत में जल्पना, विष करालऽमृत नहिन।।

भावार्थ– दाहिने गाल की फड़कन अमृततुल्य विचार का संकेत है। वार्ताक्रम में ऐसा होना कथित वचन की अमृतोपमता का ज्ञापक है। बायें गाल का स्फुरण वर्तमान में आये विचार की करालता, विषाक्तता का परिचायक है। ऐसे प्रसंग पर बोलने की कौन कहे, चिन्तन भी बन्द कर देना चाहिए।

चौपाई– छोट मोट बाधा बुधि खोवत।
तब हरि ठोढ़ी मध्य[२०] बिगोवत।।
शमन हेतु फड़कहिं चट दायीं।
बाम ठोढ़ि खतरा करि जायी।।

भावार्थ– जब छोटी-मोटी बाधायें बुद्धि को विनष्ट करने लगती हैं तब संकट की सूचना एवं उसके शमन-हेतु ठोढ़ी फड़कती है। हरि ठोढ़ी में गुप्त रहकर भी संकेत देते हैं। संकट का पक्ष बदलते ही दायीं ठोढ़ी में कम्पन होगा। बायीं ठोढ़ी का स्पन्दन खतरे के आगमन को स्पष्ट करता है।

चौपाई– दायीं गरदन[२१] पीछे डोला।
नमन हेतु सुखमय हरि बोला।।
बाम फरक जब रोक अनूपा।
की प्रणाम थल अनभल रूपा।।

भावार्थ– दायीं गर्दन के पृष्ठ भाग का स्पन्दन किसी स्थल पर प्रणाम करने का संकेत देता है। ऐसी भगवान की प्रेरणा समझनी चाहिये। किन्तु जब ग्रीवा बायीं ओर फड़के तब समझना चाहिये कि प्रणाम योग्य स्थल नहीं है। उस स्थल पर भलाई नहीं होगी।

दोहा– पावन प्रभु की प्रेरणा, कन्धा[२२] फड़के सोझ।
बाम कन्ध फड़कन लगा, माया प्रेरित शोध।।

भावार्थ– दक्षिण स्कन्ध का स्फुरण प्रभु की पवित्र प्रेरणा एवं प्रभु-प्रेरित संकल्पों का सूचक है। इसी प्रकार वाम स्कन्ध-स्फुरण के विचार माया प्रेरित जानना चाहिये।

चौपाई- फड़कत नोक[२३] पखौड़ा पीठी।
बाँह जोड़कर अस्थी दीठी।।
पूरा मन चञ्चल जब होई।
अथवा भजन भाव में गोई।।

भावार्थ– पीठ में हाथों के जोड़ के निचले भाग के पास एक हड्डी

की नोंक है जिसे पखौड़ा कहते हैं। इस बड़ी हड्डी की नोंक बगल में हाथ के नीचे, पिछले भाग में है। जब दाहिनी नोंक फड़कती है तब समग्र स्तर पर मन की संतोषजनक अवस्था जाननी चाहिए। अर्थात् उस समय मन भजन-भाव की भावनाओं से संयुक्त रहता है। मन:स्थल की विकृतियों से युक्त, चलायमान स्थिति पखौड़ा हड्डी की बायीं नोंक के स्पन्दन से ध्वनित होता है।

चौपाई— भजन भाव रत दाहिन नोका।
बाम नोक मन सर्वस धोका।।
सचल[२४] पीठ भजनहिं अनुसारा।
सोवहुँ जागहुँ सतगुरु सारा।।

भावार्थ— समग्र मन के भजन-चिन्तन एवं लगन के उत्थान-पतन के अनुरूप पखौड़े की नोंक में स्पन्दन होता है। चिन्तन-लगन में प्रवृत्ति दाहिनी नोंक के स्पन्दन से तथा चिन्तन-विक्षेप बायीं नोंक के स्पन्दन से ज्ञात होता है। नोंक के अतिरिक्त पीठ के अन्य भागों के स्पन्दन से भजन-प्रसार में सहयोग ही मिलता है। दायीं पीठ के स्फुरण से सद्गुरु सहनशीलता की शिक्षा देते हैं, बायीं ओर का स्पन्दन सोने का प्रतिषेध करता है। इस अवसर पर जमीन से पीठ टेकना भी वर्जित है।

दोहा— सोये चिन्ता मन क्षति, फड़कत बायें जान।
दाहिन हरि प्रेरित करैं, सोये सब कल्यान।।

भावार्थ— वाम पीठ-स्फुरण के समय सोने से चिन्ता एवं विशेष मानसिक क्षति का विधान है। दाहिनी पीठ का स्पन्दन सोने के लिए प्रभु के संकेत का परिचायक है।

चौपाई— सेवत वसन शोधि मन रोका।
विमल विराग हेतु लखि धोखा।।
दायीं पीठ धारे शुभ होई।
ईश प्रसाद परख युत सोई।।

भावार्थ– नवीन वस्त्र धारण करते समय विमल वैराग्य की रक्षाहेतु इष्ट मन के लगाव इत्यादि का शोधन करके आवश्यकतानुसार रोक देते हैं। ऐसा संकेत बायीं पीठ के स्फुरण से मिलता है। किन्तु दायीं पीठ का स्फुरण वस्त्र धारण के शुभ परिणाम, वैराग्य में सहायक अनासक्ति को पुष्ट करनेवाला, प्रभु के प्रसाद का द्योतक है, अतः ऐसा वस्त्र धारण करने योग्य होता है।

चौपाई– बाम प्रचालि वसन दर माहीं।
संगदोष दुःखमय भल नाहीं।।
लोकदृष्टि पुष्पाणि सँवारा।
वसन विशिष्ट महादुख कारा।।

भावार्थ– जब बायीं पीठ फड़कती है तब सुवस्त्र प्रतीत होने पर भी वह शुभ नहीं है, प्रयोग निषेध है, क्योंकि ऐसे वसन के संग से दोष उत्पन्न होगा। वह दुःखद, हानिप्रद है अतः असेवनीय है। लोकदृष्टि में पुष्प सदृश सँवारा वस्त्र भी दुःख का कारण हो सकता है। हाँ, दक्षिण पृष्ठ का स्फुरण वस्त्र की अनुकूलता का संकेतक है।

दोहा– जन जानत जो हरि द्रवे, प्रभु सब रूपहिं देख।
आगम अनुभव पर कथा, किन पाया है लेख।।

भावार्थ– अनुभवाश्रित यह पथ आपकी विशिष्ट बुद्धि की अपेक्षा नहीं रखता। भक्त उतना ही जान पाता है जितना वह इष्ट द्रवित होकर जनावें। प्रभु सभी स्थानों पर अपने जन की गतिविधि एवं स्वरूप को स्पष्टतः देखते रहते हैं। आगम-अनुभूति भविष्य इत्यादि के त्रिकालातीत सत्य का उद्घाटन क्या कभी लेखबद्ध हो सका है? कदापि नहीं। यह तो प्रभु-कृपाजन्य क्रियात्मक अनुभूति है।

चौपाई– जन मन व्यथा व्यथित तन जानी।
सन्त सहहिं इच्छा बलवानी।।
जब वह सन्त सहत तन जाहीं।
ता छन वाम पीठ सुधि नाहीं।।

भावार्थ– स्वरूपस्थ महापुरुषों में अंग स्फुरण का संचार अपने लिए नहीं होता अपितु ये स्फुरण अन्य भाविकजनों के कल्याण का विधान रचते हैं। जब किसी भक्त-शरीर में घातक व्यथाओं से मन दुश्चिन्ताग्रस्त हो जाता है तब महापुरुष स्वेच्छा के बल पर व्यथाओं को स्वयं लेकर सहन कर लेते हैं। ऐसी स्थिति में वह रोग बायीं पीठ के स्पन्दन से सूचित होता है। पूज्य श्री गुरुदेव भगवान उपर्युक्त परिवेश में मरणासन्न रोगियों के रोगों को भी पाँच-दस मिनट में ही उतार लिया करते थे तथा स्वयं व्यथित होकर कई दिन भोगते थे।

चौपाई– विश्व दीख निज आतम जैसे।
दया प्रवाह भेद नहीं कैसे।।
तब दायाँ अध्यात्म अरूपा।
बाम[२५] बगल खण्डन रति कूपा।।

भावार्थ– जब यह चराचर विश्व अपनी आत्मा एवं निज अंगों के सदृश दिखायी पड़े और अन्तःकरण दया-प्रवाह में बह चले, तब हाथ के नीचे दाहिनी काँख का स्फुरण अदृश्य रहते हुए भी अध्यात्म स्वरूप की पुष्टि करता है। बायीं काँख का स्पन्दन आध्यात्मिक परिपुष्टता का खण्डन करनेवाली मायिक प्रवृत्तियों के विपुल विस्तार का संकेत है।

दोहा– चार अंगुल बगली तजा, फरकी दाहिन[२६] पीठ।
अध्यात्म मन पुष्ट है, बाम मन्द गति दीठ।।

भावार्थ– दाहिनी काँख से चार अंगुल पीठ की ओर स्फुरण का आशय आध्यात्मिक प्रक्रिया में मन की पुष्टता एवं दृढ़ता का सूचक है। काँख के बायीं ओर इस स्थान पर स्फुरण आध्यात्मिक क्षीणता का बोध कराता है।

चौपाई– नाभि समानान्तर कटि[२७] देशा।
भजन प्रचालि दहिन भजनेशा।।
भजन विहीन विकल मन काया।
प्रेरि बाम कटि हरि दरसाया।।

भावार्थ– नाभि के समानान्तर कटि प्रदेश का स्पन्दन भजन करने का आदेश प्रसारित करता है। भजन करते समय यह स्पन्दन भजन-प्रवाह की संतोषजनक स्थिति की उद्घोषणा करता है। इसके ठीक विपरीत वाम कटि-स्फुरण का फल है। भजन से हीन मन और काया की विकलता, भजन की कमी का ज्ञान बायीं कमर के स्फुरण द्वारा इष्टदेव कराते हैं।

चौपाई– भूति सीख बहुविधि हरि राखी।
भूत भावि भव ज्ञान एकाकी।।
जस सँयोग होइहै तस धावा।
सूक्षम माध्यम थल जिमि पावा।।

भावार्थ– अनुभव-बोध के अनेक साधन इष्ट द्वारा संचालित होते रहते हैं जिनसे भूत, भविष्य, भव (वर्तमान) एवं एकान्त स्थितियों की जानकारी व्यक्त होती है। मायिक परत अथवा ईश्वर सूक्ष्मता के माध्यम से जैसा संयोग मिलता है वैसा ही अनुभव में प्रसारित होता है। जैसे-जैसे सूक्ष्म स्थल आते हैं, उसी क्रम में अनुभवों का परिमार्जित स्वरूप निखरता जाता है।

शब्दार्थ– भूति = अनुभूति एवं अनुभव क्रम।

दोहा– बगली सीधी चाल में, कमर[२८] काँख के बीच।
दाहिन में तन बल बढ़े, बाम पड़ा वह कीच।।

भावार्थ– कमर एवं काँख के बीच तन-स्थान का स्पन्दन दाहिनी ओर शारीरिक सबलता का प्रतीक तथा ठीक उसी स्थान पर बायीं ओर का स्पन्दन शारीरिक क्षीणता, अस्वास्थ्यकर भोजन तथा रोगों के आगमन की अग्रिम सूचना प्रदान करता है।

चौपाई– भजन भेद बहु भेद जनाहीं।
खानपान चिन्ता शुभ जाहीं।।
लिखन हेतु दुःख दोष निवारा।
भजन भाव बल जानहिं सारा।।

भावार्थ– भजन के अनेकानेक भेदों का निरूपण भगवान ही करते हैं। खान-पान इत्यादि अवसरों पर अथवा विषम परिस्थितियों में भी कल्याणकामी को अनुभव-संकेत प्राप्त होते हैं। लिखने का एकमात्र कारण दु:ख-दोषों से निवृत्ति है। भजन तथा भाव के बल पर भक्त अनुभव की समस्त सीढ़ियों को जानते हुए भी परमपथ पर ही अग्रसर होता है।

चौपाई– तन संयुक्त मन महँ कमजोरी।
की मनसा तन चिन्तन भोरी।।
तब तब फड़कि पीठि दिसि पासा।
बदन बोध जहँ चिह्न[२९] प्रकासा।।

भावार्थ– काँख एवं कमर के ठीक मध्य भाग के स्फुरण से शरीर-सम्बन्धी जानकारी प्राप्त होती है। इसके ठीक पास पीठ की ओर दाहिने अंग का स्पन्दन शरीर-सम्बन्धी मन की दृढ़ता का सूचक है अर्थात् शारीरिक कष्टों से मन अविचल रहता है किन्तु वामांग पर इसी स्थान का स्पन्दन शरीर-सम्बन्धी मन की दुर्बलता का बोधक है।

शब्दार्थ– तन संयुक्त = शरीर को लेकर।

दोहा– बायाँ मन तन चिह्न है, दायाँ चिन्त न होय।
तन संकेतक चिह्न तजि, पीठ में अंगुल दोय।।

भावार्थ– कटि एवं काँख के मध्य बिन्दु से दो-चार अंगुल पीठ की ओर दक्षिण अंग का स्फुरण मन को शारीरिक चिन्ताओं से उन्मुक्त इंगित करता है। इसी स्थल का वामांग-स्फुरण शारीरिक क्षीणता को लेकर मन का चिन्तित रहना सूचित करता है।

दोहा– भजन बिन्दु से अलग जुग, अंगुल पीठी[३०] ओर।
दायें चले सँयुक्त बल, बाएँ मन बल थोर।।

भावार्थ– दक्षिण कटिप्रदेश में भजन-चिह्न से दो अंगुल पीठ की ओर फड़कना मन का भजन-बल से संयुक्त होना निर्देशित करता है। इसी स्थल पर वामाङ्ग स्फुरण भजन-बल की न्यूनता का परिचायक है।

चौपाई— तजि युग अंगुल भजन संकेता।
पृष्ठ एक शुभ अनभल देता।।
कहुँ युग अंगुल उदर[३१]पसारा।
भजन अन्न तृप्ती क्षुध हारा।।

भावार्थ— कटिस्थित भजन-बिन्दु से दो अंगुल दाहिनी पीठ का स्पन्दन भजनपरायण मानसिक प्रवृत्ति का और ठीक उसी स्थल पर वामाङ्ग का स्फुरण भजनवृत्ति की न्यूनता का बोधक है। इसी भजन-बिन्दु से दो अंगुल पेट की ओर दक्षिणाङ्ग का स्फुरण भजनरूपी अन्न द्वारा पूर्ण आत्मिक तृप्ति का बोध होता है। इसके विपरीत वामांग में इस स्थल के स्पन्दन से क्षुधित आत्मा के लिए भजनरूपी अन्न के अभाव का संकेत मिलता है। अत: ऐसी दशा में तत्काल चिन्तन-भजन में प्रवृत्त हो जाना चाहिये।

टिप्पणी— भोजन (अन्न) के दो प्रकार हैं। एक प्रकार के भोजन से पञ्चभौतिक शरीर की तृप्ति होती है। इसके अन्तर्गत चावल, गेहूँ इत्यादि जो कुछ भी खाद्य पदार्थ हैं उनका विधान है और दूसरा, भजन से क्रमश: प्रकट होनेवाला परमात्मा ही एक अन्न है जो आत्मा को परिपूर्ण, परिपुष्ट तथा परितुष्टि के साथ स्थायित्व देनेवाला है।

चौपाई— दायीं[३२] छाती प्रेम पुरातन।
सत शिक्षा शुभ सगुन सुरातन।।
बाम चलत माया मति गाढ़ी।
हृदय जनावत आसुर ठाढ़ी।।

भावार्थ— दाहिनी छाती का स्फुरण साधक के पुरातन प्रेम अथवा प्रेमपूरित हृदयों के मिलन तथा सत्य, शिक्षा, दैवी सम्पद् के उत्कर्ष द्वारा आत्मा (सुरातन) में प्रवेश का संकेत प्रदान करता है जबकि उसी स्थल पर वामांग का स्फुरण घनीभूत माया तथा आसुरी सम्पद् का सूचक है। इष्टकृपा इसी प्रकार अपने जन को सचेत करती रहती है।

चौपाई– छाती उदर सन्धि[३२क] स्पन्दन।
माया भजन बीच उलझा मन।।
साधक तीव्र प्रयास बढ़ावै।
स्वानुकूल सफलता पावै।।

भावार्थ– यहाँ पर भजन और माया के प्रति श्रद्धा का प्रवाह बराबर-बराबर है। आदेश है कि भजन बढ़ाओ। भजन के प्रभाव से माया का प्रवाह कटता जायेगा। अभी साधक की यही अवस्था है, प्रयास करें। जैसा कि विभीषण की अवस्था थी–

सुनहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हि महुँ जीभ बिचारी।।
(रामचरितमानस)

चौपाई– सीना[३३] बाहु पास जो चाली।
सफल मनोरथ होइहैं हाली।।
वृथा विचार योजना पोली।
जो कहुँ सीना बाम सकोली।।

शब्दार्थ– सकोली = सिकुड़न।

भावार्थ– परम में स्थित महापुरुषों के मतानुसार भुजा के निकट सीना स्फुरित होने से मनोगत विचार तत्काल पूर्ण होने का संकेत मिलता है। बायें सीने एवं भुजा की सन्धि-स्थली का स्पन्दन संकल्प-विकल्पों की निरर्थकता प्रमाणित करता है। ऐसे ढीले-ढाले, क्षरणशील, आपात-रमणीय कुविचारों का तत्काल त्याग ही श्रेयस्कर है।

चौपाई– सोइ[३४] सन्धि वर्तमान विचारा।
दृढ़ गहि राखहु शुभ कह पारा।।
भुज उर सन्धी फरकि बतावत।
बाम सुनिश्चय पार न पावत।।

भावार्थ– अभ्यासशील पुरुषों के अनुसार दाहिने बाहु और सीने की सन्धि का स्फुरण इष्टानुकूल योजना, आचरणीय विचारों तथा कल्याणमूलक

भविष्य का वाचक है। इसके विपरीत वामांग में उसी स्थल का स्फुरण सुनिश्चित एवं दृढ़तम प्रतीत होनेवाले निश्चय को भी तत्काल त्यागने का आदेश देता है क्योंकि उस निश्चय को क्रियान्वित करने से कल्याण असम्भव है।

शब्दार्थ– पारा = मनोगत विचार।

दोहा– अन्न शुभाशुभ लखि पड़े, उदर[३५] संकेत जो नाथ।
अनुरागी के तोष में, गुरु गोविन्द की बात।।

भावार्थ– शुभाशुभ अन्न का संकेत उदर के स्फुरण से प्रतिबिम्बित होता है। इष्ट की इच्छा से उत्प्रेरित यह स्फुरण विरही अनुरागियों के तोष तथा तृप्ति के लिए अत्यधिक प्रभावकारी है। अनुभवी सूत्रपात में गुरु और गोविन्द एक दूसरे के पूरक, पर्याय हैं।

दोहा– स्पन्दन सुप्ती सुरा, जो सपने बोल जनात।
सम सूरत आकाश रव, विपुल भेद दरसात।।

भावार्थ– यद्यपि इन अनुभवों के अनेक भेद-प्रभेद हैं, जिन्हें प्राय: भोक्ता ही जानता है। स्फुरण की तरह विषय-वस्तु का स्वरूप लेकर अनुभव की चार धाराएँ विशेष उल्लेखनीय हैं। ये सभी प्रारम्भ में जागृत होकर शनै:-शनै: उत्कर्ष को प्राप्त होती हुई परम पराकाष्ठा में पहुँचकर परब्रह्म, अक्षर, सनातन का बोध देती हैं। अनिष्टों से बचानेवाली इन समस्त इष्ट-प्रेरणाओं के नाम इस प्रकार हैं–

(क) सुषुप्ति सुरा-सम्बन्धी अनुभव,
(ख) स्वप्नसुरा-सम्बन्धी अनुभव,
(ग) समसुरा-सम्बन्धित परम से संयुक्त अनुभव,
(घ) आकाशवाणी से मिलनेवाले विशेष आदेश।

चौपाई– दाहिन उदर नाभि के पासा।
फरक सँजोवत अनभल नासा।।
निम्न वर्ग कर देखत फीका।
तदपि पान कर असन अमी का।।

भावार्थ– नाभि के निकट उदर का दायाँ भाग अन्न की उत्तमता एवं उसकी दोषमुक्तता का उद्घोषक है। निम्न वर्ग अर्थात् अति गरीब, विपन्न अवस्थावालों के हाथों से परसा जाने तथा फीका प्रतीत होने पर भी वह अमृततुल्य एवं अवश्य सेवनीय है। श्रीकृष्ण ने **'दुर्योधन घर मेवा त्याग्यो, साग विदुर घर खायो।'**

हाथ की चक्की से आटा पीसकर जीवन-निर्वाह करनेवाले एक गरीब व्यक्ति ने गुरुनानक से निवेदन किया– भगवन्! कल मेरी कुटिया में प्रसाद ग्रहण करें। गुरु ने स्वीकृति दे दी। उसी समय एक रईस ने भी गुरु से अनुरोध किया– प्रभो! कल हमारे यहाँ आपका निमन्त्रण है। गुरु ने स्वीकृति दे दी। रईस लौट गया।

दूसरे दिन गुरुनानक गरीब भक्त के घर प्याज-रोटी खाने लगे। रईस को यह पता चला तो तमतमाया गुरुजी के पास पहुँचा, बोला– आप यह सूखी रोटी क्यों खा रहे हैं? यह छप्पन प्रकार के व्यंजन सेवा में प्रस्तुत हैं।

गुरुनानक ने सूखी रोटी एक हाथ में और घी से तर रोटी दूसरे हाथ में लेकर दबाया। चुपड़ी रोटी से रक्त की बूँदें और सूखी रोटी से दूध टपकने लगा।

वस्तुतः गुरुनानक महापुरुष थे। वह भगवान से मिलनेवाले संकेतों पर चलते थे इसीलिए उन्हें ज्ञात हो जाता था कि कौन-सा अन्न शुद्ध है, कौन-सा नहीं। हरि प्रेरक के रूप में सदैव साथ थे।

चौपाई– बायाँ फड़कत अन्न सुलोना।
परसत चाखत अमृत सोना।।
तदपि असन विष सम कर जानू।
बाम उदर हरि रोक पिछानू।।

भावार्थ– विशिष्ट पदार्थों से परिपक्व, सुस्वादु भोजन, स्वर्ण थाल में सुसम्पन्न अवस्थावालों से भी परसा जा रहा हो, किन्तु यदि ऐसे अवसर पर नाभि के निकट वाम उदर में स्फुरण होने लगे तो वह भोजन विषतुल्य,

भजन का अवरोधक, अन्तर-विक्षेप कारक एवं अनुपयुक्त होने के कारण नितान्त असेवनीय है।

चौपाई– नख शिख गुरु उर संगति करहीं।
सत अनुशासित सतत उचरहीं।।
मन गो रस तजि हरि रस राहीं।
कोटि बोल बुध फड़क जनाहीं।।

भावार्थ– नख-शिखपर्यन्त सद्गुरु को हृदय में धारण करके जो भाविक मन से उनकी संगति करते हैं, सत्य एवं शाश्वत परम धन से अनुशासित रहते हुए मनतन्त्र से विचरते हैं, मन और इन्द्रियों के विषयों का त्याग करके हरिरस में लिप्त, अनुरक्त हैं, हरि-पथ के ही पथिक हैं; उनके लिये परम बोधस्वरूप महापुरुष स्फुरण के माध्यम से करोड़ों प्रकार के उपदेश देते रहते हैं।

चौपाई– हरिप्रेरित थल तजि कछु बाहीं[३६]।
फड़कत जानहु मदद मिलाहीं।।
माया मोह थल तजि फड़कावा।
भुजा[३७]तो मदद कहुँ नहिं पावा।।

भावार्थ– दाहिने कन्धे में हरिप्रेरित स्थल को इंगित करनेवाले स्थान से लगभग तीन अंगुल नीचे बाँह का स्पन्दन सहायता प्राप्ति का निर्णायक संकेत है, उस पर निर्भर भी हो जाना चाहिये। वाम स्कन्ध में माया-मोह प्रेरक स्थली के तीन अंगुल नीचे निर्दिष्ट स्थल का स्फुरण इस तथ्य को उद्घाटित करता है कि कहीं से भी मदद नहीं मिलेगी।

दोहा– दाहिन भुज[३८]संकेत शुभ, हरिप्रेरित जो होय।
नयन संग जो भुज चलैं, मंगलकारी सोय।।

भावार्थ– दाहिनी भुजा के स्पन्दन से शुभ संदेश, शुभ वातावरण परिलक्षित होता है। यदि दाहिनी भुजा तथा दाहिनी आँख साथ-ही-साथ स्फुरित होती है तो उसका परिणाम परम मंगलकारी एवं कल्याणमय है।

चौपाई– भुजा दाहिनी शुभ संदेशा।
नयन संग अति मंगल शेषा।।
बाम भुजा हरि फड़कि जनाहीं।
करनी बदलहुँ मंगल नाहीं।।

भावार्थ– दाहिनी भुजा-स्पन्दन से शुभ समाचार तथा दक्षिण नयन-बाहु साथ-साथ स्पन्दित होने पर कल्याण की समस्त विधायें सुसज्जित हो उठती हैं, कुछ ही शेष रहता है।

वाम भुजा (वामाङ्ग) की फड़कन अशुभ नहीं हुआ करती, वरन् यह भी इष्ट का ही निर्देशन है। इन फड़कनों से भगवान साधक को वर्तमान क्रिया एवं चाल में परिवर्तन की सलाह देते हैं क्योंकि इस परिवर्तन में ही भावी मंगल-विधान निहित है।

चौपाई– सफल होहि कह दायँ[३९]कलाई।
की सगरी नाड़ी सुखदाई।।
बाम कलाई जहँ लगि नाड़ी।
फड़कि सफलता माया गाढ़ी।।

भावार्थ– दाहिने हाथ में कलाई के पास नाड़ी फड़कने से सफलता विदित होती है। वाम नाड़ी का स्फुरण अपरिष्कृत माया के गहरे आवरण तथा तज्जनित पूर्ण असफलता का निर्देशन करता है।

चौपाई– अनुभव राम-रूप विज्ञाना।
ईश्वर वाणी जिह्व पहचाना।।
तेहि सम सन्त सखा कोउ नाहीं।
निशिदिन राह देखाइ मनाहीं।।

भावार्थ– अनुभव स्वयं राम के रूप से प्रसारित ईश्वर की वाणी है। बौद्धिक ज्ञान से भिन्न होने के कारण इस ज्ञान को विज्ञान कहते हैं। किसी विरले भाग्यवान के अन्तराल में इसका सूत्रपात होता है। इसके समान सन्तों

का सन्तत हितचिन्तक, सहज सुहृद् एवं सखा तथा अहर्निश निरन्तर मायिक प्रकृति की आघातजन्य वेदना का शमनकर्त्ता, साधक के अन्त:करण का परिष्कार करते हुए भक्ति-मार्ग-प्रदर्शक अन्य कोई उपाय नि:सन्देह नहीं है। परमार्थ का क्रमश: प्रसार अनुभव के माध्यम से साधक के अन्त:करण में विकसित किया करते हैं। वे भाविक का सदैव साथ देते हैं और यहाँ वे स्वयं खड़े हो जाते हैं।

चौपाई– सन्तन सीख वेद विधि पूरी।
हरि वचनामृत साधन भूरी।।
तेहिं बल जन हरि स्वर पथ नीका।
हरि वचनामृत परस अमी का।।

भावार्थ– अनुभव आत्मा को परमात्मा की ओर खींचता है। अनुभव भगवान की अन्त:प्रेरणा से उद्भूत अमृत वचन तथा सुव्यवस्थित साधना का निष्कर्ष है। यह वाणी सन्तपथ की शिक्षाओं को पूर्ण करनेवाली, वेद-विधान के अनुकूल है। अनुभव अनुकूलता के उसी आश्रय से भक्त हरि के शाश्वत मंगलकारी पथ पर अग्रसर होता है। भक्त स्वर-पथ (यौगिक मार्ग) से आगे बढ़ता है जो वस्तुत: प्रेरक प्रभु के पीयूष वाणी का प्रसार है, जो अमिय स्वरूप का स्पर्श कराकर अमृतत्व में ढाल देता है।

दोहा– पल पल साधे आत्मा, मन अनन्त सों वेग।
सदगुरु के कारण मिले, मन गो माया तेग।।

भावार्थ– इन अनुभवों तथा इष्ट-संकेतों पर आचरण कर साधक आत्मा को परम साध्य से संयोग की दिशा में अग्रसर करता है। मन की अनन्त प्रवृत्तियों को समेटकर इस इष्टमयी साधना में प्रविष्ट होना चाहिये। सद्गुरु के द्वारा ही मन एवं इन्द्रियों में स्थित माया को काटने का अस्त्र-शस्त्र मिलता है।

दोहा– अंगुष्ठ पास गदली[४०] चली, दाहिन पैसा पास।
बाम गदेली के चले, पायी पूँजी नास।।

भावार्थ– दाहिनी गदेली में अंगूठे के निकटस्थ स्थल के स्फुरण का आशय सम्पत्ति-प्राप्ति है और वाम अंगुष्ठ के निकटवर्ती गदेली के स्पंदन से धन-क्षय या धन की अनुपलब्धि अभिप्रेत है। वस्तुतः परमकल्याण के पथिकों एवं अनन्यतम भक्तों की दृष्टि में आत्मिक सम्पत्ति ही सम्पत्ति है। ऐसा विचार साधना में पूर्तिपर्यन्त सहायक एवं सच्चा हितैषी रहता है। इष्ट-प्रेरित भक्तों के लिए भौतिक सम्पत्ति में कोई आकर्षण नहीं रह जाता।

चौपाई– लेखन लगन जो फड़क अंगुष्ठा[४१]।
तरजनि संगत तब हरि तुष्टा।।
बाम अँगुलिया फड़कि जनाहीं।
लिखन काल हरि रोकत आहीं।।

भावार्थ– दाहिने हाथ के अंगुष्ठ, तर्जनी का अग्रभाग यदि साथ-साथ फड़के तो पत्र इत्यादि लिखने का सुयोग एवं उसमें भगवान की सहमति भी जाननी चाहिए। इसके विपरीत बायें हाथ के अंगुष्ठ और तर्जनी के अग्रभाग का स्फुरण लेखन के लिये भगवान का वर्जन इङ्गित करता है।

चौपाई– कम्प कनिष्ठ[४२]संकल्प निरोगा।
बाम विपुल हरि चिन्तन रोगा।।
रोगारोग संकेतन माहीं।
मानस रोग निवारि पराहीं।।

भावार्थ– दाहिने हाथ की कनिष्ठिका का स्फुरण संकल्प-विकल्प की आरोग्यता का स्पष्टीकरण है। इस प्रकार का संकेत बायें हाथ की कनिष्ठा में हो तो विपुल मायिक चिन्तन तथा रोग का लक्षण समझना चाहिए। रुग्ण संकल्पों का तात्पर्य संसारोन्मुखी चिन्तन से है जिसमें आवागमन के संस्कार पड़ते हैं। आरोग्य संकल्प का तात्पर्य ऐसे चिन्तन से है जो मानसिक वृत्तियों का परिष्कार करके योग-साधना में प्रवृत्त तथा भवबाधा का अन्त करता है। जब तक इष्ट के सामंजस्य काल को पाकर नाना प्रकार के रोग निर्मूल नहीं

हो जाते तब तक रोगारोग की फड़कन सतत हुआ करती है। लक्ष्यप्राप्ति के उपरान्त वे उस पुरुष के लिए प्रसुप्त रहते हैं।

चौपाई— उपज हस्त महँ परसत ताली।
अंगुष्ठ[४३] दाहिन पत्र सुखाली।।
सोई थल बाम दिशा जेहिं फड़का।
पत्र संयोग नहीं कह तड़का।।

भावार्थ— मणिबन्ध रेखा (कलाई) से लेकर हथेली के भीतर छिपा हुआ अंगूठे का भाग (जहाँ हथेली के मोटे चमड़े और उसके पृष्ठ भाग के पतले चर्म का मिलन होता है) के दाहिने हाथ में स्फुरण से पत्र-प्राप्ति का शुभ संयोग तथा वाम अंगुष्ठ का यही स्थल फड़कने से किसी प्रकार के पत्र अथवा सूचना का अभाव अभीष्ट है।

शब्दार्थ— तड़का = फड़का।

चौपाई— मति अनुराग विराग समानी।
ब्रह्मचर्य आज्ञा रति मानी।।
तिनहिं सदा शिव रूप भिखारी।
परम तोष कर संग पुकारी।।

भावार्थ— ब्रह्मचर्यव्रती, मन-बुद्धि से अनुराग और वैराग्य में समाहित चित्तवाले, इष्ट-आज्ञापालन रत, इष्ट निर्देशनानुकूल उठने-बैठने, कार्य करनेवाले पुरुष के परम हित एवं पूर्णत्व की तुष्टिहेतु शिवस्वरूपस्थ सद्‌गुरु (भिखारी) सदा उसके साथ रहते हुए ऐसे साधक को निरन्तर चलाते रहते हैं। साधनामयी प्रक्रिया की यह गति पूर्तिपर्यन्त उत्तरोत्तर क्षिप्रतर होती जाती है। अन्ततोगत्वा महापुरुष प्रकृति के अन्त तक की मंजिल तय कराकर भाविक को शाश्वत एवं सनातन परमात्मा का दिग्दर्शन कराते हुए उसे कल्याण-स्वरूप में स्थापित करा देते हैं।

दोहा— अर्थ-बिछोही काल में, फरकि गदेली बाम।
अरथ प्राप्ति सूचना, फड़कहि दायाँ ठाम।।

भावार्थ– दाहिने अंगूठे की पार्श्ववर्ती हथेली फड़ककर अर्थ-प्राप्ति तथा वाम गदेली फड़ककर अर्थ-बिछोह, संचित पूँजी का नाश, अपव्यय तथा अन्यान्य क्षति इंगित करते हैं।

चौपाई– सुन्दर अवधू मन महँ जानहु।
पृष्ठ[४४] हथेली दायँ बखानहु।।
बाम हथेली भाग उताना।
फड़कत हरि रुख साधु अयाना।।

भावार्थ– हथेली के पृष्ठभाग (मुट्ठी बन्द करने पर हथेली ढँक जाती है किन्तु पृष्ठ भाग दृष्टिगोचर होता है) के स्पंदन से परमाकांक्षी योगानुयायी भाविक को साधन की संतोषजनक अवस्था समझनी चाहिए। अवधूत (माया से अप्रभावित) पथ में अज्ञान का आवरण आ जाने पर द्वन्द्वपूरित होते ही इष्ट बायीं हथेली के स्फुरण द्वारा भक्त को सँभलने के लिए सावधान करते हैं।

चौपाई– असगुन संगहि हस्त पिछाली।
वृथा साधुता अंतर चाली।।
पिछला भाग हथेली जोगी।
सुन्दर सुखद दायँ सुख भोगी।।

भाावार्थ– बायें हाथ की हथेली का पृष्ठ भाग स्पन्दित होकर किसी-न-किसी विरोधी तत्त्व के क्रियाशील होने का संकेत देता है जो साधन में नश्वर को प्रवेश देनेवाला है। दाहिनी हथेली के पृष्ठ भाग की फड़कन योगाचरण की पुष्टता का सूचक है अर्थात् योगाचरण सुगठित, बिना किसी खिंचाव के, सहज, सुखप्रद है तथा अमित प्रभाव परमात्मा के संयोग से मिश्रित पीयूष-धारा एवं पूर्ण उपलब्धि का द्योतक है।

चौपाई– कनिष्ठ पास में रेख[४५]गदेली।
हर विक्षेप तथागत शैली।।
सोइ गदेली पास कनिष्ठा।
बाम विशेष विक्षेपत निष्ठा।।

भावार्थ— दाहिनी कनिष्ठिका के पासवाली खड़ी गदेली की रेख की फड़कन से विक्षेपों का हरण तथा तथागत तत्त्वदर्शिनी शैली का परिज्ञान होता है। इसी प्रकार यदि बायें हाथ में कनिष्ठिका के नीचे (गदेली खड़ी करने पर जो भाग जमीन को छूता है) के स्फुरण से भजन में विक्षेप की उत्पत्ति तथा भजननिष्ठा में बाधक तत्त्वों का उदय परिलक्षित होता है।

चौपाई— बड़ी नोक[४६] कोहनी हर बानी।
कर संकल्प आन पहिचानी।।
वाम अनीक दाहिना नीका।
जानहिं गुरु चरणारत टीका।।

भावार्थ— हाथ मोड़ने पर कुहनी में दो नुकीली हड्डी तथा एक गोल हड्डी का स्थल उभरता है। उनमें से बीच की बड़ी नोंक फड़कना दूसरों द्वारा अपने प्रति उठनेवाले संकल्पों का परिचायक है जिसको गुरु चरणों में अनुरक्त अधिकारी ही समझ पाता है। दाहिनी बाँह की कुहनी का स्फुरण सहायक संकल्पों के सृजन का बोधक है, बायीं कुहनी का स्फुरण विरोधी विचारों का बोधक है जिससे साधक में विशेष विक्षेप एवं विजातीय विचारों का प्रवेश होता है।

शब्दार्थ— हर बानी = प्रत्येक वाणी।

दोहा— मानस वेग विलोकि जन, कौन चिन्तनाकार।
सुरत संकलप मूल में, लघु शुभ कोहनी[४७] सार।।

भावार्थ— कभी-कभी मानस में संकल्पों का वेग, बाहुल्य देखकर भक्त स्वभावत: विचार करता है कि कौन उसका चिन्तन कर रहा है? विचार करते-करते सुरति जब मूल संकल्पकर्ता के पास पहुँच जाती है तब कुहनी की छोटी नोंक में स्पन्दन होने लगता है जिससे ज्ञात होता है कि यही व्यक्ति चिन्तन कर रहा था। जब अन्य किसी के संकल्प को हम अन्य का मानने लगते हैं तो बायीं कुहनी की छोटी हड्डी की नोंक स्पन्दित होकर हमारे निर्णय की असत्यता का बोध कराती है।

चौपाई– पाँव दाहिना पिण्ड[४८]संकेती।
हरि रुख चालन आज्ञा देती।।
मन विचार कहुँ दूरी जाई।
दाहिन सुभग चाल रघुराई।।

भावार्थ– दायें पाँव की पिण्डली फड़ककर संकेत करती है कि अभीप्सित स्थान की यात्रा करने के लिए, कहीं आने-जाने के लिए भगवान की स्वीकृति एवं प्रेरणा है।

चौपाई– हरि हर साधक संकट जानी।
पर हितकारी रोक रवानी।।
सकल भेद संगत कर बायीं।
पिण्ड संकेतहि भूलि न जाई।।

भावार्थ– साधक के गमनागमन में आसन्न संकट जानकर प्रभु रवानगी (यात्रा) रोकने के लिए बायीं पिण्डली के स्फुरण से निर्णायक संकेत देते हैं। बायीं पिण्डली फड़कना इष्ट द्वारा यात्रा का वर्जन है अत: भूलकर भी कहीं नहीं जाना चाहिए।

चौपाई– इन्द्रिय पाँव मध्य तन जेती।
विलग विभाजन आज्ञा देती।।
कुत्सित मन विचार कोइ महिला।
गो[४९] जनने में बामहि शैला।।

भावार्थ– पंचतत्त्वों से निर्मित, मिट्टी के पुतले जैसे क्षणभंगुर तन (जो काल के पराधीन है, एक श्वास भी अधिक नहीं ले पाता, जिसे काल बरबस घसीट लिया करता है) के अन्तर्गत जननेन्द्रिय इत्यादि के स्थान विलग विभाजन के साथ विभिन्न निर्देशन प्रदान करते हैं। कुत्सित एवं दूषित विकारयुक्त विचारोंवाली पापायुका महिला के सामने आते ही जननेन्द्रिय में बायीं ओर फड़कन होती है एवं संकेत मिल जाता है जिससे साधक कुसंग में पड़ जाने पर भी प्रयत्नपूर्वक बचाव कर सकें। यह स्पन्दन किसी कुत्सित महिला द्वारा देखे जाने अथवा उसके द्वारा चिन्तन होने पर दूर से भी मिलता

है। यह स्मरणीय है कि आध्यात्मिक साधना का उतार-चढ़ाव इस मन पर है। अतः यदि यही विकृत रहेगा तो भजन कैसे सम्भव होगा?

चौपाई— जननेन्द्रिय दायँ कर माहीं।
फड़कि जनाव नारि मन शाही।।
शुभ संकेत विचार न हीना।
रहु हरि रंग बोध गुरु दीन्हा।।

भावार्थ— जननेन्द्रिय का दायाँ स्पन्दन विकाररहित, शाही स्वभाव की नारी का सूचक है। ऐसी नारी भजन में बाधक नहीं है। दाहिनी ओर का स्फुरण आश्वासन देता है कि हरि-रंग में, इष्ट-चिन्तन में लगे रहो, घबराने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार का सुबोध गुरुदेव ही देते हैं क्योंकि वे भक्तों में उनके संकल्पों के साथ-साथ सदैव उनमें निवास करते हैं। यह बोध पूर्ण सद्गुरु महिमा के अन्तर्गत है।

दोहा— पुरुषहिं दाहिन अंग शुभ, दोहुँ कर आज्ञा जान।
नारी तन बाएँ प्रभू, दहिन रोक पहिचान।।

भावार्थ— भगवान का कृपा-प्रसार स्त्री-पुरुष, ऊँच-नीच सबमें समान है। तभी तो जो स्थिति महर्षि याज्ञवल्क्य की थी, वही ज्ञानगम्य परमपद गार्गी के लिए भी था। जहाँ तुलसी का स्वरूप है, वहीं मीरा का भी है। अंगों के दोनों ओर का स्फुरण इष्ट का ही आदेश-मात्र है। स्वयं प्रभु ही जनहिताय निर्देश देते रहते हैं। यदि वे कुछ न कहना चाहें तो मनुष्य के पास अन्य कोई व्यवस्था अथवा साधन कदापि नहीं है। पुरुषों के सन्दर्भ में दाहिने अंग का स्फुरण शुभ है। माताओं, बहनों के शरीर में वाम अंग का स्पन्दन कल्याणकारी तथा दक्षिण अंग का स्फुरण विजातीय द्रव्यों के प्रवाह तथा उनसे सँभलने के लिए प्रभु-प्रेरणा का सूचक है।

चौपाई— अण्डकोश[५०क] स्थल कछु दायीं।
रूप बालिका विलग न भाई।।
अण्डकोश बामा कर चाली।
लगन सुबोध पर व्यापहि काली।।

भावार्थ– अण्डकोश के दाहिनी ओर का स्पंदन बालिकाओं के विचारों की निष्कलुषता प्रमाणित करता है, वाम अण्डकोश का स्पंदन सुव्यवस्थित लगन-प्रवाह में भी विजातीय तत्त्वों के व्यवधान की ओर इशारा करता है। संकल्पों को विजातीय प्रवाह में बहने से पूर्व इष्ट-प्रेरित स्पंदन साधक को सावधान, सचेत करता है। वैसे तो दुनियाभर में अपने को छोड़कर कोई बुरा नहीं है।

चौपाई– तेहि संगति नर विरत विशेखी।
मदन क्षोभ कृत भूलि न देखी।।
समुझहिं अनुभव सतपथ रागी।
होइहहिं परम तत्व जग त्यागी।।

भावार्थ– वाम अण्डकोश का स्पंदन अबोध बालिकाओं के संग तक का निषेध करता है। यह निषेध सकारण है। संसार से विरक्त इष्ट-चिन्तन परायण मन भी ऐसे अवसरों पर काम-वासनाओं से क्षुभित हो सकता है। ऐसी संकटापन्न परिस्थिति में भूलकर भी उधर नहीं देखना चाहिए। मानसिक दृष्टि से उन्हें इष्ट के रूप में देखें तथा वैसा ही विचार करें। तीव्रतम विरही अनुरागियों के लिए ही समझ, सीख तथा जानकारियों का विधान है। इसी अनुभवगम्य प्रक्रिया के सूक्ष्मतम प्रसार के परिणामस्वरूप भाविकजन दुस्तर माया-मोह का परित्याग कर प्रकृति पार परमतत्त्व की स्थिति प्राप्त कर लेते हैं।

टिप्पणी– परमतत्त्व परमात्मा का ही वाचक है। सच्चिदानन्द, परब्रह्म इत्यादि भी उसी के पर्याय हैं। काल, कर्म और साधना-भेद से महापुरुषों ने इन विभिन्न नामों का क्रियात्मक अनुभव किया है। उदाहरण के लिए सत् से चित् का संयोग होते ही आनन्द का उद्‌भव होता है, अत: परमात्मा इन तीनों का समवाय सच्चिदानन्द है।

आत्मा सर्वत्र तथा सबमें समान है किन्तु कोई विरला साधक ही भक्ति के माध्यम से प्रकृति से उपराम होकर परम का दिग्दर्शन करते हुए परमभाव

में समाहित हो पाता है। पर से संयुक्त आत्मा ही परमात्मा कहलाती है। साधक पूर्णत्व के वृहद् अहं में सर्वत्र स्वयं को ही पाता है इसलिए उस परमतत्त्व का एक नाम ब्रह्म की संज्ञा से सम्मानित है। वह अपरिवर्तनशील, सनातन तथा शाश्वत परमतत्त्व है जिसके दिग्दर्शन के साथ ही द्रष्टा जीवात्मा उसी के स्वरूप में अवस्थित हो जाता है। अत: वह परमतत्त्व का प्रतिरूप तथा उसके प्रतिबिम्ब का कर्त्ता भी है। इसी प्रकार 'अहं ब्रह्मास्मि', 'तत्त्वमसि' इत्यादि महाकाव्य वर्ण एवं मात्रा-भेद से उसी भाव की अभिव्यक्ति तथा चरमोत्कृष्ट लक्ष्य की स्थिति का प्रतिपादन करते हैं।

चौपाई– इष्ट स्वरूप दीख उर माहीं।
तत अनुसार जनावहिं ताहीं।।
तत स्वरूप गुरु मूरति माहीं।
पकड़ि जीव मन सारहि ताहीं।।

भावार्थ– उस तत्त्व के दिग्दर्शन के लिए इष्ट का स्वरूप हृदय में देखिये। जैसे-जैसे ध्यान के द्वारा इष्ट का स्वरूप स्पष्ट होता जायेगा तदनुसार उस परमतत्त्व का स्वरूप विकसित होता जायेगा। उस परमतत्त्व की उत्पत्ति का मूल कारण गुरुदेव का स्वरूप एवं उन्हीं की कृपा है जो अधिकारी जीवात्माओं में समाहित होकर पूर्तिपर्यन्त उनका साज-सँभार करती है।

चौपाई– दाहिन गुदा[५०ख] चक्र की रेली।
फड़की लगनिया विपदा ठेली।।
बाम चक्र दिशि फड़कन होई।
लव विशेष दु:ख अन्तर होई।।

भावार्थ– गुदा के दाहिने किनारे का स्पन्दन विपदारहित बाल सुलभ निर्दोष इष्ट-चिन्तन का ज्ञापक है। गुदा के बायें किनारे का स्पंदन विशेष लगन में भी दु:ख का अवरोध प्रस्तुत कर जाता है। अत: अंतराल में इष्ट के प्रति जो लगन है उसे सुधारना चाहिए।

चौपाई– गुदा दाहिने बाल अमी का।
बाम फड़क तब बालक फीका।।
होइहहिं परम तत्त्व के रागी।
समुझहिं अनुभव अचल विरागी।।

भावार्थ– गुदा-स्पन्दन का दूसरा भाव बालकों की गतिविधि से सम्बन्धित है। यदि गुदा के दाहिने भाग में थोड़ा आगे की ओर स्पंदन हो तो बालक अमृततुल्य तथा साधना में सहायक है– ऐसा समझना चाहिए; किन्तु दु:खद बालकों का संग बायीं गुदा के स्पंदन से विदित होता है। इन अनुभवों की यथार्थ परिधि में पहुँचकर कोई भी पुरुष परमतत्त्व का अनुरागी हो जाता है। किन्तु इन अनुभवों को पूर्णरूपेण निश्चल तथा स्थिर वैराग्यवान् पुरुष ही समझता और उसमें प्रवेश पाता है।

चौपाई– एहि विधि सब अंगन अनुसारी।
भक्तहिं निसिदिन संग पसारी।।
भक्त विशेष पुरुष अरु नारी।
जन अनुशासित सुरत सँभारी।।

भावार्थ– उपर्युक्त क्रम से अंग-प्रत्यंग के रोम-रोम पर विभिन्न निर्देशनों के अनुभव होते रहते हैं जिनकी शृंखला भक्तों के हृदय-देश में अहर्निश प्रसारित होती रहती है। अनन्य भक्ति की प्रवेशिका में प्रवेश पानेवाला पुरुष अथवा नारी सभी के लिए प्रभु-कृपा का प्रसार समान रूप से है। इसी से अनुशासित होकर सुरत की डोरी सँभाल लेते हैं– यह जन-विशेष का कथन है।

दोहा– आसन अंग विलोकि जन, फड़क दाहिना कूल।
तुरत बैठिए भजन में, शुभ निर्देशन मूल।।

भावार्थ– आसन स्थान (चूतड़) अथवा कूल्हे से थोड़ा नीचे दाहिनी ओर स्फुरण हो तो तुरन्त भजन में बैठने का निर्देशन समझना चाहिये। भक्तिपरायण पुरुष के लिए मूल इष्ट से प्रेरित यह विमल संकेत है।

चौपाई– अथवा केवल बैठ सँकेतू।
दाहिन शुभ मंगल कर हेतू।।
बाम कूल सम आसन चाली।
परिवर्तन आसन सुखशाली।।

भावार्थ– दाहिने आसन स्थान की फड़कन बैठने का संकेत, शुभ तथा परम कल्याणकर है। वाम आसन स्थान का स्फुरण आसन परिवर्तन से सुखद परिणाम होने का निर्देश प्रस्तुत करता है।

चौपाई– बाम जाँघ फड़कन दरसावा।
कतहूँ निन्दक रूप बनावा।।
जाँघ दाहिनी ऊपर[५२क] भागा।
स्तवन होहिं कहूँ हरि जागा।।

भावार्थ– बायीं जाँघ फड़ककर बताती है कि कहीं कोई निन्दा कर रहा है। इस स्फुरण का एक दूसरा पक्ष भी है। कल्याणप्रद क्रिया के अंतराल में जब विजातीय प्रक्रिया भी प्रवेश पाने लगती है जिससे साधक की निन्दा होगी, ऐसी विषम परिस्थिति में बायीं जंघा फड़कती है। हाँ, स्थान में कुछ ऊँचाई-निचाई संभव है। दाहिनी जाँघ के ऊपरी भाग का स्फुरण बताता है कि हरिकृपा प्रसूत गुणों को लेकर कहीं साधक की प्रशंसनीय चर्चा हो रही है अथवा साधना में अनुकूल, स्तुत्य प्रक्रिया का प्रवेश हो रहा है।

चौपाई– जाँघ[५२ख] अंतरी भाग सो डोली।
स्तवन अंतर प्रगट न बोली।।
बाहर मुख बायाँ चल जंघा।
निन्दा चरचहिं विहर कुसंगा।।

भावार्थ– बैठी हुई अवस्था में जाँघ के नीचे का भाग स्पन्दित होने से ज्ञात होता है कि जनमानस में साधक की प्रशंसा के भाव उठ रहे हैं यद्यपि वे भाव मुख से व्यक्त नहीं हो रहे हैं। बैठने पर जाँघ के ऊपरी भाग में स्फुरण से संकेत प्राप्त होता है कि साधक के आचरण के विषय में जन-वार्ता में

निन्दा हो रही है अथवा साधक ऐसा कोई कार्य कर रहा है जिसके परिणामस्वरूप लोग उसकी निन्दा करेंगे।

चौपाई— बाम जाह्नु फड़कि जनावा।
निन्दा विपुल रूप उर आवा।।
अपर भेद सुनु भव रुज हारी।
चित प्रवाह सुख स्तवनकारी।।

भावार्थ— जाँघ में कई स्थान हैं जिनके स्पंदन अलग-अलग निर्देश देते हैं। कुछ स्थान-परिवर्तन से यदि बायीं जाँघ फड़कती है तो स्पष्ट है कि हमारे हृदय एवं मानस में ऐसा कुत्सित प्रवाह है जो विपुल निन्दा का कारण सिद्ध होगा। अपर अर्थात् दाहिने स्थान का स्फुरण भवरोग नाशक, चिन्ता को सुख में प्रवाहित करनेवाला तथा स्तुत्य है। यथार्थतः सदा सुख इष्ट परिवेश में है– **'राम बिमुख सुख सपनेहुँ नाहीं।'** वैसे तो सांसारिक कार्यों में भी ये स्पन्दन सहयोग प्रदान करते हैं किन्तु इष्ट की दृष्टि तो सदैव कल्याण कार्यों में रहती है। केवल व्यवस्थित ढंग से आयुपर्यन्त जीवन बिता लेने का नाम कल्याण नहीं है। यह तो इस जीवात्मा का प्रकृति से ऊपर उठकर परमात्मा में समाहित एवं स्थिर हो जाने पर ही संभव है। इसी पर अग्रलिखित चौपाई पर प्रकाश डाला गया है।

चौपाई— हरि प्रसाद उर सृष्टि उपाई।
अनुभव उर अन्तर दरसाई।।
पीठ बायँ संग आसन[२क] दायाँ।
फड़कत बैठन कह रघुराया।।

भावार्थ— सर्वस्व हरण कर लेनेवाले हरि के कृपाप्रसाद से विषयरत व्यथित हृदयस्थली में भी कल्याणदायिनी दैवी सम्पद्, सजातीय प्रवृत्ति का वास्तविक प्रसार होता है जो परमदेव की ओर प्रेरित करनेवाली है। इन समस्त अनुभवों का दिग्दर्शन अन्तर्देश में होता है। 'पीठ बायँ संग आसन

दायाँ' से आशय है कि यदि आप सो रहे हैं और इष्ट का विचार भजन में नियुक्त कराने का अनुभव है क्योंकि श्वास में लगने के लिए उपयुक्त समय ब्रह्मबेला का सुअवसर आया है, ऐसे ही अनुकूल समय में यदि बायीं पीठ स्पन्दित होती है तो सोना मना है। यदि पीठ के साथ दाहिने आसन स्थान में स्पन्दन हो तो व्यवस्थित आसन लगाकर उठ बैठने के लिए हरि का संकेत है। प्रश्न उठता है– बैठकर किया क्या जाय?

दोहा– बैठहु आसन मारि के, रत चिन्तन गत ईश।
हरि सब देखत ही चले, सदा नवावे शीश।।

भावार्थ– उपर्युक्त संकेत के साथ ही आसनस्थ हो बैठ जाओ और ईश्वर की गति समझकर प्रेमपूर्वक चिन्तन में रत हो जाओ। भगवान के रुख एवं भाव-भंगिमा का अवलोकन करते रहो, प्रतिक्षण उनके निर्देशनों के लिए सतर्क रहो तथा सतत प्रार्थना के साथ चरणों में शीश नवाते रहो।

चौपाई– बाम पाँव अरु आसित[?ख] दायें।
फरकि जनाव न कतहूँ जायें।।
पद दाहिन संग आसित बायीं।
नाथ संकेत सु चलत भलाई।।

भावार्थ– संग विशेष के प्रयोजन, स्वमन के उच्चाटन अथवा दूसरों द्वारा प्रस्तुत योजनानुसार कहीं प्रस्थान करने की जब हम तैयारी करने लगते हैं ऐसे अवसर पर यदि बायें पाँव की पिण्डली और आसन का स्थान (चूतड़) दाहिनी ओर फड़कता है तो कहीं नहीं जाना चाहिए। वैसे तो कई-कई अंग साथ-साथ फड़ककर विभिन्न तथ्यों की जानकारी प्रस्तुत करते हैं किन्तु वे सभी अनवरत चिन्तनरत साधक की विषयवस्तु हैं। इन अनेक संकेतों में से दो संकेत प्रस्तुत चौपाई का वर्ण्य-विषय है। दूसरे संकेत के अनुसार दाहिने पाँव की पिण्डली और बायाँ चूतड़ साथ-साथ अथवा एकाध सेकेण्ड के अन्तर से स्पन्दित हो तो कहीं भी जाना शुभ तथा शुभद इष्ट की सहानुभूति का प्रतीक है।

चौपाई– आसित आसन कूल इकाई।
आसित संग उठ बैठन भाई।।
तेहिं संगत बहु भेद जतावहिं।
हरि की शोध विरल जन पावहिं।।

भावार्थ– 'आसित', 'आसन', 'कूल्ह', 'हिप', 'चूतड़' एक दूसरे के पर्याय हैं। इसके वामांग की फड़कन से उठना तथा दक्षिण भाग के स्फुरण से बैठने का संकेत समझना चाहिए। इसके साथ ही अनुशासित भाविकों के लिए अनेक संकेत हैं। उन समस्त संकेतों को भगवान शंकर ने मानस में शोधा है जिसे प्राप्त करनेवाले विरले जन होते हैं। उनकी प्राप्ति चिन्तन-क्रम से श्रमसाध्य है।

चौपाई– हर संदेश समन मन लेही।
सदा स्तवन भाजन तेही।।
शूर वीर अधिकारी तेई।
हरि पद विमुख न स्वाँसा लेई।।

भावार्थ– फड़कन से मिलनेवाले प्रत्येक संकेत जो मन के शमन तथा पूर्ण संयम के लिए अपनाते हैं, वे सतत् स्तवन के भाजन हैं। वे शूरवीर ही सच्चे अधिकारी हैं जो भगवत् चरणों के विमुख श्वास भी नहीं लेते। विपरीत संकल्पों के आते ही वे विकल हो उठते हैं। ऐसे भाविक केवल इष्ट में ही तृप्त रहते हैं।

चौपाई– कपटी कूर ईश मुख नाहीं।
अमल भूति सिधि उपज कि ताहीं।।
निर्मल चित उर रूप पसावा।
रवि स्वरूप पतंग किमि पावा।।

भावार्थ– लोलुप, कपटी, क्रूर एवं हरि-पथ विमुख लोगों के अन्तस्थल में निर्मल अमल अनुभूति की जागृति तथा अनुभवों के परिणाम की सिद्धि नहीं होती। निर्मल चित्तवाले पुरुष के हृदय में उनके स्वरूप का पसाव होता

है। उस स्वयंप्रकाश रवि को पतंगा नहीं पा सकता। यह पञ्च भौतिक अग्नि तो जीवों को दग्ध करती है किन्तु वह योगाग्नि तो स्वयंप्रकाश के स्वरूप का स्पर्श करानेवाली तथा परम आनन्दकर है।

चौपाई– रोम रंच भर भेद नियारा।
कृपा साध्य बल संगत सारा।।
हरि अन्तर्यामी नित बोला।
संत सरल चित नीति न डोला।।

भावार्थ– यद्यपि स्फुरण के कतिपय सामान्य भेद आपके समक्ष प्रस्तुत किये जा रहे हैं किन्तु यथार्थत: उनका स्वरूप सूक्ष्म है। रोम-प्रतिरोम इन स्पन्दनों के विभिन्न परिणाम हैं जिनका परिज्ञान इष्ट की अहैतुकी कृपामात्र से सम्भव है। इष्टकृपा एवं सत्संगति के प्रभाव से इसे जाना जा सकता है। अन्तर्यामी हरि अन्तर्मन की स्थिति, गतिविधियों का नियमन करते रहते हैं तथा अनवरत संकेत दिया करते हैं। सहज सरलचित्त सन्त इष्ट निर्देशोत्पन्न व्यवस्थानुरूप अविराम अग्रसर होते रहते हैं और कभी भी उस नीति का त्याग नहीं करते।

चौपाई– भाग अन्तरी घुटना[५३] पासा।
बाम वितर्कहि दाहिन नाशा।।
वितर्क उपजत घुटना बाएँ।
दायँ सो तर्क शमन करि जाएँ।।

भावार्थ– भक्त में लक्ष्य के विपरीत विजातीय कुतर्क पैदा होने पर इष्ट की प्रेरणा से बायें घुटने में फड़कन होने लगती है। इसी भाँति विजातीय कुतर्क के शमन एवं अन्त होने का संकेत दाहिने घुटने के स्पन्दन से मिलता है।

सम्बन्ध– अग्रलिखित दोहे एवं चौपाइयाँ भजन-सम्बन्धी निर्देशनों से सीधा सम्बन्ध रखती हैं। इनमें भजन में प्रवृत्त पथिक के लिए भजन की गति-प्रगति का मानक प्रस्तुत है। जमीन से सटा हुआ अँगूठे से एड़ी तक

तलवे के बगल का भाग स्पन्दित होकर यह सूचना देता है कि आपके मन में भजन की बहुत शिथिल पकड़ है। भजन की गति बैलगाड़ी जैसी मन्द है जबकि आपको परमात्मापर्यन्त दूरी तय करनी है। अत: संकेत के साथ ही साधक का प्रयास बढ़ जाना चाहिए। इसी तरह अंगूठा और एड़ी के बीच का स्थान भजन-पथ पर पैदल यात्रा के समान है। पंजे का स्फुरण रेल की चाल तथा इससे आधा इंच एड़ी की ओर मोटर की गति का द्योतक है। अंगूठे की आधी दूरी पर स्पन्दन विमान-जैसी अति सूक्ष्म गति से साधक के चिन्तन को स्पष्ट करता है। ऐसा स्फुरण बाह्य तरंगों के शमन एवं मन में मात्र इष्ट-चिन्तन-प्रवाह की सही दिशा प्रस्तुत करता है। निर्दोष साधना तथा स्पर्श के समय दाहिना अंगूठा फड़केगा परन्तु साधना के गिरावटकाल में बायाँ अंगूठा स्पन्दित होता है। स्पन्दन का यह क्रम साधक के हित में पराकाष्ठापर्यन्त रहता है। कभी मन शिथिलता, हताशा, कुण्ठा की विजातीय वीथियों में संत्रस्त हो जाता है तो कभी मन की पकड़ विमल अनुरागपूर्ण रहती है। दोनों ही अवस्थाओं में इष्ट निरन्तर साथ देते रहते हैं जिसकी अभिव्यक्ति स्पन्दनों के माध्यम से अग्रलिखित चौपाइयों में द्रष्टव्य है।

चौपाई– एड़ी अंगुष्ठ सिस्त तल टेढ़ी।
फड़कि अंगुठा मध्य की एड़ी।।
दाहिन भजन भाव जस जाकी।
बाम विकार बढ़ाव एकाकी।।

भावार्थ– एड़ी से अँगूठापर्यन्त टेढ़ी तली से होती हुई रेखा (शिस्त) पर कभी अंगूठे के पास, कभी मध्य की एड़ी तथा कभी-कभी एड़ी के समानान्तर स्फुरण होता है। ये स्पन्दन साधक की क्षमता के ज्ञापक हैं। दाहिने पैर का अंगूठा चिन्तन के उत्कर्ष शिखर पर स्पन्दित होता है। अंगूठा एवं एड़ी के मध्य का स्पन्दन भजन की मध्यम गति तथा एड़ी के समानान्तर का स्फुरण भजन की अत्यल्प पकड़ का द्योतक है। बायें पैर के इन स्थानों के स्पन्दन चिन्तन में संसारानुगत संकल्पों तथा विजातीय प्रवृत्तियों के प्रसार की गति का संकेत प्रदान करते हैं।

चौपाई— बाम बगल थल सुखद न जानू।
अंगुष्ठ लगन बल विपुल गिरानू।।
पंजा पास लगन बहु ढीला।
एड़ि परस माया चह लीला।।

भावार्थ— बाएँ पैर में तलवे के बगल अंगूठे की ओर स्फुरण से निर्दिष्ट है कि भजन-स्थल सुखद नहीं है। अंगूठे की बगल फड़कने से लव लगने के बल में ह्रास सूचित होता है। पंजे के पास फड़कने से लगन की पकड़ अधिक ढीली है। एड़ी के बगल में स्पन्दन हो तो माया को विघ्न डालने के लिये सन्नद्ध एवं प्रस्तुत जानना चाहिए।

दोहा— दायँ अंगुठा[५४] अचल चित, लगन राम सर जान।
पंज पास बहु ठीक है, एड़ी अल्प पहचान।।

भावार्थ— अंगूठे के बगल में तलवे का स्पन्दन राम-रूप-रस माधुरी में अवगाहन करानेवाली अचल एवं यथार्थ लगन इंगित करता है। पंजे के समानान्तर का स्फुरण दूसरी कोटि का होते हुए भी संतोषजनक है; किन्तु एड़ी का स्पन्दन स्वल्प भजन का परिचायक है। अचलता की भी दो सीमाएँ हैं— एक तो वह जहाँ अचलता में प्रवेश किया जाता है, यह न्यूनतम या निम्नतम सीमा कहलाती है। अचलता की दूसरी सीमा उसकी पराकाष्ठा या उच्चतम अभिव्यक्ति है, जहाँ पूर्ण अचलत्व की स्थिति है।

दोहा— वाम अँगूठा भजन थल, फड़कहिं लगन मिटान।
एड़ी[५५क] मूल चलत लगा, विष माया का तान।।

भावार्थ— बायें पैर के अंगूठे के बगल भजन-स्थल के स्फुरण से लगन-क्रम नष्ट होने की स्थिति में है। वाम पैर में एड़ी के बगल भजन-स्थल का स्पन्दन सूचित करता है कि विषय-विष का विस्तार करनेवाली माया अपना ताना-बाना रचने में संलग्न है।

दोहा— एड़ी छोर लौं अल्प है, अंगुष्ठ लगन महान।
पंजा[५५ख] बगली तल चले, लगन लगी पहचान।।

भावार्थ– दाहिने पैर की एड़ी के छोर पर लगन की अल्प मात्रा पंजे के बगल सामान्य तथा अंगूठे की बगल का स्फुरण लगन की महान एवं गति का ज्ञापक है।

चौपाई– होत संयोग लगन गति डोलहिं।
शुभ अरु अशुभ श्वास हरि तोलहिं।।
एहि विधि अन्तर क्षण-क्षण भाखी।
एड़ी अल्प लव ईश न राखी।।

भावार्थ– सुव्यवस्थित प्रगतिशील लगन भी विपरीत संयोग प्राप्त होने पर चलायमान हो जाती है जिससे चिन्तन-क्रम टूट जाता है तथा संकल्प दूषित हो जाते हैं। श्वास के शुभाशुभ प्रवाह एवं क्षणिक परिवर्तनों को भी भगवान देखा करते हैं और प्रतिक्षण अपने जन को निर्देश किया करते हैं। चिन्तन की प्रवेशिका में प्राय: तलवे के बगल में स्पन्दन होता है जिसका आशय है कि इष्ट के स्वरूप को पकड़ने या स्थायी रूप से धारण कर सकने की क्षमता आप में नहीं है। ऐसा संकेत प्राप्त करते ही साधक को अपना प्रयास तीव्रतर कर देना चाहिए जिससे उसकी पकड़ काम कर सके। स्पर्श की स्थिति में पंजा तथा अंगूठे के निकट संकेत प्राप्त होते हैं।

चौपाई– छिगुली एँड़ सिस्त तल[५६] बगली।
फड़कत भजन भाव सुधि सगली।।
दाहिन कोर भजन सुधि चोखी।
बाम चलत माया गति दोखी।।

भावार्थ– पैर की कनिष्ठिका से एड़ीपर्यन्त तलवे के बगल में स्फुरण भजन-भाव की स्मृति पर प्रकाश डालता है। दाहिने पैर की कनिष्ठिका के बगल का तलवा स्पन्दित होकर भजन की संतोषजनक सुधि प्रदर्शित करता है। बायें पैर का यही स्थल स्पन्दित होकर भजन विरोधी दु:खद संस्कारों के संकलन तथा मानस में माया की गतिशीलता का सूचक है।

दोहा– तलवा[५७]ऊपर पाद में, फड़कत बीच निशान।
दाहिन संभव लोक में, बाम असम्भव दान।।

भावार्थ– तलवे के ऊपरी भाग का मध्य बिन्दु यदि दक्षिण पद में स्फुरित हो तो मानसिक संकल्पों की साध्यता तथा इष्ट के प्रति पूर्ण समर्पण परिलक्षित होता है। बायें पैर में उपर्युक्त बिन्दु का स्फुरण समर्पण का अभाव इंगित करता है। यह उल्लेखनीय है कि साधनात्मक संवेगों में भी आरोहावरोह लगा रहता है। आपकी सूक्ष्म पकड़ से उनका उन्नयन होगा तथा प्रयत्न में रंचमात्र शैथिल्य भी साधनात्मक विच्छिन्नता का कारण होगा। अतएव साधक को सतत सतर्क रहना चाहिए।

चौपाई– तलवा बीच कमल की रेखा।
आगन्तुक इंगित जिमि देखा।।
एँड़ पंज के बीच सुहाई।
कमल[५८क] फड़क पैदल कोउ आई।

भावार्थ– तलवे के बीच कमल रेखा के आसपास का स्फुरण स्थान-भेद से आगन्तुकों के सत्-असत् मन्तव्यों का विश्लेषण तथा उनके आगमन का प्रत्यक्ष बोध कराता है। साधनरत के लिए एक निर्धारित स्थिति, काल-विशेष में इससे बहुत सहयोग मिलता है, इससे वह अपना बचाव कर सके। दाहिने पैर में एड़ी और पंजा के बीच कमल स्थान का स्फुरण शुभसंकल्पी साधक के पैदल आने का संकेत है। बायें पैर के उसी स्थल के स्पन्दन से आगन्तुक के रुकने या उसकी विषम परिस्थिति का ज्ञान होता है।

चौपाई– पंजा[५८ख] बीच ट्रेन पहचाना।
इञ्च[५८ग] हटे तब मोटर जाना।।
अंगुष्ठ के तल[५८घ]अंदर डोली।
आवत यान संकेतन बोली।।

भावार्थ– तलवे में पंजे के मध्य का स्पन्दन रेल माध्यम का तथा कमल बिन्दु से एड़ी की ओर एक-दो इञ्च हटकर स्फुरण आगन्तुक के मोटर माध्यम से आगमन को इंगित करता है। अँगूठे के तल मध्य का स्फुरण यान माध्यम से आगन्तुक के आने का संकेत प्रदान करता है।

दोहा– गला[५१]दाहिना शूर की, क्षमता अन्दर जान।
कायर के सम भावना, गला वाम पहचान।।

भावार्थ– दाहिने गले का स्पन्दन भजन प्रवेश-क्षेत्र में शौर्य तथा वर्चस्व का प्रतीक है। बायें गले का स्पन्दन भजन करने में कायरों को होता है।

दोहा– गला दाहिने में चले, शूर वीर का भाव।
बाम गला फड़कन करे, कायर मनुज बनाव।।

भावाथ– दाहिने गले में यदि स्पन्दन हो तो साधक को समझना चाहिए कि उसके भजन या लौकिक व्यवहारों में उत्कर्ष, शूरवीरता का उभार आ रहा है तथा बायाँ गला यदि फड़के तो वह मनुष्य को कायर बना देता है।

दोहा– बाहर झगड़े होत हैं, जीत न देखी कोय।
बिना भजन भगवान के, शूर बचा नहिं कोय।।

भावार्थ– निखिल प्रपंचात्मक जगत् में युद्ध होते रहते हैं किन्तु कहीं भी विजय परिलक्षित नहीं होती क्योंकि ये समस्त विवाद मात्र उदर-पूर्ति के लिए ही होते हैं। भगवान के भजन तथा आत्मा का परमात्मा में प्रवेश के बिना दुनिया में ऐसा कोई शूरवीर नहीं जिसे माया खा न ले।

दोहा– जल थल नभ में झगड़ते, जीत न देखी कोय।
परमानन्द न आत्मा, माया आश्रित होय।।

भावार्थ– सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में जल, थल एवं नभ के व्यापक संघर्ष दृष्टिगत होते रहते हैं किन्तु जीत किसी ने नहीं देखी। इन संघर्षों की परिणति न तो आत्मदर्शन में होती है और न इनमें परम की अनुभूति का आनन्द ही है वरन् इसके विपरीत इन संघर्षों में प्रवृत्त जीव विकराल माया के आश्रित ही होता जाता है।

चौपाई– भजन छाड़ि के भोगहिं साँचा।
समुझि कुपंथ विपुल मन राँचा।।
तो समरथ हित साधन करहीं।
भक्त काज अनुभव फुर हरहीं।।

भावार्थ– चिन्तन निरत साधक संगदोष तथा विकृतियों के संसर्ग से भजन का त्याग कर देता है तथा भोगों को सत्य समझकर विपुल कुपथ में मन-रंजन करता है तो समर्थ प्रभु इष्टदेव भक्तहितार्थ साधन का संयोग बना देते हैं और सत्य अनुभवों को भी झूठ बना देते हैं। प्राय: चिन्तन-पथ के पथिक माया के विशेष प्रहार से भ्रमित होकर अनिष्ट में ही इष्ट का अन्वेषण करने लग जाते हैं, जैसा नारद को हुआ था। भजन का परित्याग कर उन्होंने माया की प्राप्ति के लिए भगवान से कृपायाचना तथा कमनीय स्वरूप की कामना की। प्रभु ने कहा– ऐसा ही होगा; किन्तु नारद का यह अनुभव झूठा सिद्ध हुआ। अत: भक्तों का कल्याण-साधन करने के लिए भगवान शुद्ध एवं सत्य अनुभवों को भी असत्य में परिवर्तित कर देते हैं।

चौपाई– अनुभव झूँठ कहत तिन पाहीं।
जे अनुभव तल योग कराहीं।।
नारद माया शोधन चाहा।
तेहिं पल अनुभव अतुल अथाहा।।

भावार्थ– वह परात्पर परमात्मा इष्ट अपने आश्रितों के कल्याणार्थ यथार्थ अनुभवों को भी अन्यथा कर देते हैं। जो अनुभवाश्रयी योग में प्रवृत्त होते हैं, उनके परम हित के लिए प्रभुप्रेरित अनुभव सत्य के स्थान पर मायाप्राप्ति के लिये संकेतक प्रतीत होने लगते हैं– जैसा कि नारद को माया में ही आनन्द मानने पर प्रतीत हुआ था। इस काल में चिन्तन-पथ इतना द्वन्द्वपूर्ण हो जाता है कि सत्-असत् निर्णयकारी विवेक भी साथ नहीं दे पाता। स्वयं नारद के लिए भी प्रभु की वाणी अनुभव अगम्य, अथाह हो गयी। उनके कथन का यथार्थ भाव नारद की समझ से परे हो गया।

दोहा– विकल विलोकत नाथ कहँ, देखत भ्रम पथ साँच।
जन हित माया लेत हरि, सुख दुख ओढ़ी आँच।।

भावार्थ– उपर्युक्त विषम परिस्थितियों में व्याकुल होकर नारद अपने स्वामी की ओर देखने लगते हैं कि अब हमारा कल्याण हो जाय। वैसे वे

भ्रम-पथ (माया) को ही सच मानकर सुख-भोग में ही कल्याण देख रहे थे किन्तु भक्त हितकारी प्रभु ने उनका 'परमहित' कर दिया। भक्त परवश, करुणा-वरुणालय प्रभु ने नारद को अच्छी प्रतीत होनेवाली आपात-रमणीय माया को स्वयं ले लिया। भक्त के कष्ट को स्वयं झेल लिया। सुख-दुःख, पाप-पुण्यपर्यन्त विषय विधाता का प्रपंच ही है जिसमें चिन्ताओं की ज्वाला विद्यमान है। प्रभु अपने भक्तों को इन ज्वालाओं से बचाकर उन्हें सुख-दु:ख की नश्वरता का भी बोध कराते हैं। फिर तो नारद के सामने- 'नहिं तहँ रमा न राजकुमारी।' की स्थिति आ गई। विद्या और अविद्या माया एवं योग-माया दोनों के तिरोहित हो जाने पर ही नारद ने उन प्रभु के वास्तविक स्वरूप का दिग्दर्शन किया और अपनी करनी के लिए क्षमा माँगने लगे।

चौपाई— संचित पर्त हरी सब भाखे।
जनहित हरि साधन सब राखे।।
विकल विलोकत भवजल धारा।
सोइ नारद अवतार अधारा।।

भावार्थ— प्रभु ने नारद जी के समक्ष संचित का सविस्तार वर्णन किया। जनकल्याणार्थ हरि ने सम्पूर्ण साधनों की व्यवस्था रखी। एक समय था जब नारद भवसागर में माया की उत्ताल तरंगों में डूब-उतरा रहे थे, वही नारद इष्ट-प्रेरणा से चौबीस अवतारों में से एक अवतार-विशेष की स्थिति से अलंकृत हुए तथा अन्य अवतारों के लिए आधार भी सिद्ध हुए। नरसिंह अवतार का प्रधान श्रेय नारद जी को ही है। प्रह्लाद में अन्त:प्रेरणा एवं योग-साधना की उपलब्धि नारद जी की ही देन थी। वे ध्रुव के भी प्रेरक थे।

चौपाई— जहँ अवतार विदित जग माहीं।
सोइ नारद कछु दूसर नाहीं।।
सोइ समुझत जन सुख सम याचत।
भवन त्याग सम दुख-सुख आचत।।

भावार्थ— माया से संत्रस्त नारद भी साधन-विशेष एवं भगवत्कृपा से अवतारों की श्रेणी में आ गये। नारद जी की भी महत्ता अन्य अवतारों से कम

नहीं रही। ऐसा जानकर साधकवृन्द भी प्रकृति से परे सम एवं व्यापक सुख की कामना करता है तथा भवन इत्यादि इन्द्रियजन्य सुखों को त्यागकर सुख-दु:ख उत्पन्न करनेवाले विषयों को समान सहन करता हुआ परम की उपलब्धि हेतु कटिबद्ध रहता है। महापुरुषों का जीवन हमें प्रेरणा प्रदान करता है कि हम भी महान बन सकते हैं। उनके जीवन-चरित्र, उनकी महानता का एक कण भी हमें महान बना देने की क्षमता रखता है।

चौपाई– आतम निन्दक दर्शन दावा।
क्षणिक प्रबोध अन्त पछतावा।।
जल्पहिं कल्पित बुद्धि कहाहीं।
तिन्ह कहँ अनुभव दर्शन नाहीं।।

भावार्थ– आत्मा को पतन के गर्त की ओर अभिमुख करनेवाले तथा साथ ही अपने को ईश्वर साक्षात्कार, प्राप्ति का ढोंग दिखानेवाले आत्म-प्रवंचक स्वयं को क्षणिक प्रबोध देते तथा जीवनान्त तक पश्चाताप की ज्वाला में अनुतप्त रहते हैं। ऐसे दिवास्वप्नदर्शी आकाशकुसुमवत् अनेकानेक कल्पनाओं का विस्तार रचते हैं तथा शिष्टबुद्धि भी कहलाते हैं। ऐसे पाखण्डियों को अनुभवों का दिग्दर्शन विशद परिवेश में नहीं होता।

चौपाई– सकल कामना तजि हित सारा।
तेहिं उर अनुभव विवुध पसारा।।
हरि प्रति स्वाँस चलत मन काया।
अनुभव प्रकट हंस मुख माया।।

भावार्थ– लोक-परलोक की समस्त कामनाओं का परित्याग करके जो हित-साधन के लिए परमात्म-स्वरूप के दिग्दर्शन में संलग्न हो जाते हैं, ऐसे भाविकों के हृदय में अनुभवों का प्रसार दैवी शक्तियों द्वारा संचारित होता है। क्रिया की जागृति के अनन्तर जिस भाविक के श्वास-प्रश्वास में हरि-स्मरण का सतत संचार तथा मनसा-वाचा-कर्मणा की अनुरक्ति है, उसके लिए अनुभव अपरोक्ष रूप में क्रियान्वित होता है, तब माया भी हंसोन्मुखी हो जाती है–

संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि वारि विकार। (मानस)

वस्तुतः सन्त ही हंस हैं जो गुणरूपी क्षीर तो ग्रहण कर लेते हैं लेकिन विकाररूपी जल का परित्याग कर देते हैं।

त्रिगुणात्मिका सृष्टि मात्र नश्वर है जिसका यथार्थतः अस्तित्व है ही नहीं; तब गुण कैसा? वस्तुतः परमकल्याणकारी, सदैव सहायक गुण केवल ईश्वर में है। जब ईश्वरीय गुणधर्म जीवन में ढल जाते हैं तब सन्त ही हंस हैं जो द्वन्द्वात्मक उलझनों में प्रकृति के नश्वर तथ्यों को ग्रहण नहीं करते। जब प्रत्येक श्वास का यजन इष्ट-चिन्तन में ही होता है तब माया हंसमुखी अर्थात् ईश्वरीय गुणधर्मों में बदल जाती है।

चौपाई— जो कहुँ सन्त मिलहिं अनुभूती।
तिन्ह कर संग ग्रही करतूती।।
श्रुति पथ सद्गुरु रूप सहारा।
अनुभव प्रगट ज्योति विस्तारा।।

भावार्थ— पुराकृत पुण्योदय से यदि सद्गृहस्थों को अनुभवसम्पन्न सन्त उपलब्ध हो जायँ तो उनमें भी वास्तविक क्रिया जागृत हो जाती है और वह गृहस्थ भी उन्हीं भूमिकाओं, उन्हीं करतूतों से गुजरने लगता है। साधना ही एक ऐसी वस्तु है जो लिखने में नहीं आती, वह तो किसी अनुभवी महापुरुष के द्वारा भाविक के हृदय-देश में जागृत कर दी जाती है। सद्गुरु-रूप ही साधक का सहारा है जिसे श्रुतियों ने साधक का पाथेय बताया है। यह स्वरूप जिन्हें प्राप्त है, उनके हृदय में ये अनुभव ज्योति-विस्तार के रूप में विदित हैं तथा उनका पथ प्रशस्त करते हैं।

दोहा— सूरत सों गुरु मूरती, स्वाँसा मा सत नाम।
उर अन्दर देखत रहे, अनुभव सारे काम।।

भावार्थ— गुरु-स्वरूप एवं उनके नख-शिख में सुरत लगी रहे, स्वाँसा में सत्य एवं इष्ट का नाम उच्चरित होता रहे, हृदय-देश में उन प्रभु

के संकेत पर दृष्टि रहे तो अनुभव विषय-कर्मों को सँभालकर परमसिद्धि में परिणित कर देता है।

दोहा– अंग स्पन्दन की विधि, सब तन रोपिन रार।
चक्षु आदि तन में लखे, आतमदर्शी पार।।

भावार्थ– अंग स्फुरण की प्रक्रिया का विस्तार समस्त शरीरों में समान ही संघर्ष करती है। चक्षु, भुजा, सीना इत्यादि के स्पन्दन से सभी तन प्राय: अवगत होते रहते हैं किन्तु तत्त्वदर्शी ही उनकी पूर्ण जानकारी और पार पाता है।

दोहा– आतम सब में पूर है, सब में पावन लीक।
ताही ते सब अंग में, सब में फड़कन सीख।।

भावार्थ– वह चिन्मय अव्यक्त आत्मा सबके शरीर में समान तथा परिपूर्ण है, सभी में उसकी पावन मर्यादा का विस्तार है। उसी परमात्मा के विशेष सहयोग से सबके स्थूल पिण्ड में स्पन्दन द्वारा समान रूप में संकेत मिलता है क्योंकि वे समदर्शी तथा समवर्ती हैं। तत्त्वस्थित महापुरुषों का संसर्ग पाकर वह अनुभव पूर्ण विकसित होकर तत्त्वदर्शन में सहयोग देकर भाविक को तत्त्व से अलंकृत करता है।

दोहा– अलख निरंजन ना लखे, जन के आरत भाव।
उर अन्दर अवतार ना, 'अड़गड़' डूबी नाव।।

भावार्थ– अलख, अव्यक्त हरि आर्तजन के भावों पर जब विचार नहीं करते, हृदय-देश में अवतरित होकर भाविक का संयोग स्वीकार नहीं करते, तब तक जीवन-नौका को भवसिन्धु में डूबी हुई ही समझो। प्रकृति की अनन्त खाइयों एवं संस्कारों की तह में साधक को यह परिज्ञान नहीं हो पाता कि वह कहाँ स्थित है? इसके लिए तो बस एक ही शाश्वत विधान है कि हृदय-देश में संचरित होकर हरि योगक्षेम की व्यवस्था करते हुए साधक को स्वयं उठा लें।

दोहा— अनुभव अन्दर सुख लहे, साधत सकल शरीर।
मन अरु मति श्रोता बने, साध कहे रघुबीर।।

भावार्थ— हृदय-देश में अनुभवों की पूर्ण जागृति हो जाने पर ही उस परम सुख की उपलब्धि सम्भव है जिसके माध्यम से भाविक पथिक सम्पूर्ण शरीर के अंग-प्रत्यंगों का संयमन-नियमन कर शाश्वत स्वरूप में स्थित होता है। साधक जब स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों से क्रमशः ऊपर उठकर मन और बुद्धि को श्रोता की स्थिति में ढाल लेता है तब साधन प्रभु के श्रीमुख से व्यक्त होने लगता है। अतः क्रियात्मक पद्धति में अपने को खड़ा करें। इन्द्रियों को परिष्कृत तथा मन को नियंत्रित रखकर उन्हें इष्ट के चरणों में नियोजित करें तभी यथार्थ कल्याण एवं निःश्रेयस की उपलब्धि सम्भव है।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्दजी आश्रम ट्रस्ट

न्यू अपोलो एस्टेट, गाला नं 5, मोगरा लेन (रेलवे सबवे के पास), अंधेरी (पूर्व), मुम्बई – 400069

फोन - (022) 28255300 • ई-मेल - contact@yatharthgeeta.com • वैबसाइट - www.yatharthgeeta.com